NATIONAL DOCUMENTATION CENTRE ON LITERACY AND POPULATION EDUCATION
IAEA
NEW DELHI

प्रौढ़ शिक्षा
नई दिशाएँ

भवानी शंकर गर्ग

भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ
नई दिल्ली

प्रौढ़ शिक्षा—नई दिशाएँ

भवानी शंकर गर्ग

भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ
नई दिल्ली

भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ
17 बी, इन्द्रप्रस्थ एस्टेट,
नई दिल्ली-110002.
फोनः 3319282, 3721336

मूल्यः 60 रूपए
1997

मुद्रकः
प्रभात पब्लिसिटी, दिल्ली-110002.

आमुख

भारत वर्ष में युगों से जन शिक्षण का कार्य सामाजिक जीवन के साथ-साथ योजनाबद्ध और वैज्ञानिक आधार पर चलता रहा है। व्यक्ति,परिवार, समुदाय और समाज के विकास का कार्य एक दूसरे के विकास से जुड़ा रहा और वह सामाजिक जीवन के अंग के रूप में निरंतर रूप से स्वतः ही चलता रहा ।

इसका आधार राष्ट्र की सभ्यता, संस्कृति और आध्यात्म रहा है। देश में शिक्षा मनुष्य के लिए जीवन पर्यन्त चलने वाली एक सामान्य प्रक्रिया रही है । चाहे उसे नाम शिक्षा या प्रौढ़ शिक्षा नहीं दिया गया हो । व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में अनौपचारिक रूप से विभिन्न प्रवृत्तियों के माध्यम से शिक्षण-दीक्षण होता रहा है। भारत में शिक्षा का सशक्त माध्यम प्राचीन काल में श्रुति रहा है। कथा, कीर्तन, पर्व, त्यौहार, हाट, बाज़ार, मेले, देशाटन, तीर्थ आदि इसके प्रमाण हैं। इससे व्यक्ति की शिक्षा-दीक्षा के साथ-साथ राष्ट्रीय अखंडता और भावात्मक एकता बनी रही । व्यक्तियों के खान-पान, बोलचाल, रहन-सहन, रीति रिवाज़, धर्म मान्यताएँ आदि भिन्न होते हुए भी एकता उसी कारण बनी रही । यही करण है कि विभिन्नता में एकता हमारी विशेषता है । कहा भी जाता है कि भारत का नागरिक साक्षर चाहे न हों ज्ञानी अवश्य हैं।

ऐसा नहीं है कि भारत में औपचारिक शिक्षा कार्य नहीं चलता था । यह कार्य स्थानीय पाठशालाओं, गुरूकुलों, आश्रमों और धार्मिक स्थलों के माध्य से होता था ।

देश, काल, परिस्थितियों और बदलती आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा के स्वरूप और शिक्षण दीक्षण की व्यवस्था में कालांतर में परिवर्तन होता रहा । आधुनिक काल में विशेषकर

बाहरी शाक्तियों द्वारा भारत में अपना साम्राज्य स्थापित किए जाने और उसके बाद स्वतंत्रता के लिए जन आन्दोलन के समय औपचारिक शिक्षा कार्य को अधिक महत्व दिया गया और उसके लिए नये प्रयोगों के साथ सारे राष्ट्र में शिक्षा की नई योजनाएँ बनाकर लागू की गईं । उसी क्रम में प्रौढ़ शिक्षा को औपचारिक रूप से नया स्वरूप प्राप्त हुआ और उसे राष्ट्रीय स्तर पर न केवल महत्व ही दिया गया परन्तु संकल्प के रूप में लागू किया जाने लगा ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्र में प्रजातंत्रीय सरकार की स्थापना हुई । इसलिए यह और भी आवश्यक हो गया कि देश की जनता जो राष्ट्र निर्माण और सरकार बनाने और चलाने में भागीदार है—साक्षर हो । इस कार्य के लिए समय-समय पर अनेक योजनाएँ बनाकर लागू की गईं । 1977 में पहली बार देश में इसके लिए राजनैतिक इच्छा शक्ति बनी और उसके आधार पर संकल्प के साथ प्रौढ़ शिक्षा का कार्य प्रारंभ किया गया ।

देश में 1988 में राष्ट्रीय साक्षरता मिशन की स्थापना हुई जिसके माध्यम से इस समय सारे राष्ट्र में सम्पूर्ण साक्षरता कार्यक्रम चला कर निरक्षरों को साक्षर बनाने के लिए जन-आंदोलन के माध्यम से कार्य किया जा रहा है ।

राष्ट्र में चलाये जा रहे प्रौढ़ शिक्षा और सम्पूर्ण साक्षरता कार्यक्रम के संबंध में मैं समय-समय पर लिखता रहा हूँ । उन विचारों का संकलन इस पुस्तक के रूप में प्रस्तुत कर रहा हूँ । आशा है कि प्रौढ़ शिक्षा और सम्पूर्ण साक्षरता कार्यक्रमों से जुड़े व्यक्तियों के लिए यह लाभदायक सिद्ध होगी ।

भवानी शंकर गर्ग
चांसलर, राजस्थान विद्यापीठ एवं
अध्यक्ष, भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ

अनुसूची

1. प्रौढ़ शिक्षा और मानवता 1
2. बेहतर जीवन व शिक्षा की अनिवार्यता 11
3. शिक्षित जनता ही प्रजातंत्रीय राष्ट्र का निर्माण कर सकती है 15
4. भारतीय शिक्षा दर्शन के संदर्भ में वर्तमान शिक्षा 21
5. राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं उसकी प्रगति 28
6. जनतंत्र और संपूर्ण साक्षरता अभियान 34
7. निरक्षरता से मुक्ति का उपाय: सभी स्तरों पर समन्वय 40
8. राष्ट्रीय साक्षरता अभियान—प्रगति एवं जन-सहभागिता 46
9. अनौपचारिक शिक्षा और नई शिक्षा नीति 53
10. महिला शिक्षा: महिलाओं की भूमिका 64
11. नारी में साक्षरता प्रसार ज़रूरी 66
12. देश के औद्योगिक विकास में श्रमिक शिक्षा की भूमिका 70

प्रौढ़ शिक्षा और मानवता

प्रारम्भिक काल से ही मानव इस जगत के विभिन्न रहस्यों को उद्भाषित करने के लिए चिन्तन करता रहा है, जिसकी व्याख्या उसने विभिन्न स्वरूपों में की है। भारतीय वैदिक साहित्य में इसके यथेष्ट प्रमाण उपलब्ध हैं। वैदिक मानव ने अपने चारों ओर स्थित रहस्यमय वातावरण को देखा तो उसकी सरल बुद्धि ने प्रकृति की इन विभिन्न शक्तियों को पूजना प्रारम्भ कर दिया था। वैदिक मानव ने सम्पूर्ण चराचर जगत को देवी-देवताओं की तीन श्रेणियों में विभाजित कर दिया : द्युलोकवासी, अन्तरिक्षवासी, पृथ्वीवासी, इन तीनों लोकों की विभिन्न शक्तियों की स्तुति हेतु मानव ने अनेक सूत्रों व मंत्रों की रचना की तथा यज्ञ कुण्ड में अग्नि प्रज्ज्वलित कर दूध-घृत अन्नादि से आहुति प्रदान की। अग्नि को इन समस्त आहुतियों का संवाहक बनाया। चराचर जगत की विभिन्न शक्तियों की स्तुति के पीछे मानव की यह भावना कार्य कर रही थी कि ये सभी शक्तियाँ उसका कल्याण करेंगी। प्रारम्भिक मानव समकालीन अन्य योनियों में सर्वाधिक दुर्बल था। शरीर रचना की दृष्टि से उसके पास अन्य पशुओं की भांति तीक्ष्ण धार दांत, सींग व पंजे नहीं थे; उसका प्रमुख शस्त्र बुद्धि थी। अत: उसने अपनी बुद्धि के बल पर अव्यक्त एवं अदृश्य शक्ति का अनुभव किया तथा उसे धर्म के रूप में अग्रसर किया। शीघ्र ही उसने एक निश्चित स्थान पर निवास करना, पशुओं का पालन व कृषि करना प्रारम्भ कर दिया।

डारविन के विकासवाद के सिद्धान्त से भी यह पुष्ट होता है कि मानव का विकास निम्न धरातल के जीवों से क्रमशः हुआ है। वह प्राणी जगत में विकास के उच्चतम धरातल का प्रतिनिधित्व करता है। जीवशास्त्रीय

वर्गीकरण भी मानव का पशु जगत के अन्य सदस्यों से सम्बन्ध स्थापित करता है। तथा उसको प्राणी-जगत का सर्वाधिक मेधावी मानव की संज्ञा देते हुए कर्मों के आधार पर मानव जीवन का निर्धारण करता है। इसके अतिरिक्त समस्त संस्कृत वाडंमय में भी मानव के विभिन्न योनियों से सम्बन्धों पर यथेष्ट सामग्री उपलब्ध है।

ऐतिहासिक दृष्टि से यह माना जाता है कि प्रारम्भिक मानव विचरणशील था तथा संग्रहण और आखेट उसकी जीविका के मुख्य साधन थे। धीरे-धीरे मानव ने एक स्थान पर स्थायी रूप से रहना, कृषि करना व पशु पालना सीखा। लम्बे समय तक एक स्थान पर रहने से क्रमशः कुल, वंश, ग्राम, कबीला, (समाज) जन और राष्ट्र का विकास हुआ। इस राजनीतिक व सामाजिक विभाजन ने एक ओर तो मानव समुदाय को विकसित होने के लिए साधन व सुविधाएं प्रदान की, तो दूसरी ओर अनेक इकाइयों मे विभाजित भी किया। यह सत्य है कि भारत में पश्चिम के समान राष्ट्र की मान्यता को कभी भी नहीं स्वीकारा गया है। भारत में तो प्राचीन काल से ही हमारे श्रृषियों ने भौगोलिक सीमाओं की संकुचित परिधि के स्थान पर समस्त वसुधा को एक परिवार माना तथा उसके कल्याण की कामना की है।

अधिकांश चिन्तकों ने समष्टि के स्थान पर व्यक्ति के विषय में ही अधिक सोचा। परिणामस्वरूप यूरोप में एक ऐसे उग्र राष्ट्रवाद का उदय हुआ, जिसका सामना समस्त मानव समुदाय को दो विश्व युद्धों के रूप में करना पड़ा। यह भी सत्य है कि गत दो शताब्दियों में यूरोप में हुई औद्योगिक-वैज्ञानिक क्रान्ति ने ही अनेक ऐसे अनुसंधान किये जिसके कारण आज का विश्व भौगोलिक रूप से संकुचित हो गया है। पिछड़े और प्रगतिशील, विकासशील और विकसित देशों के मध्य की खाई पट

रही है तथा मनुष्य ने अन्तरिक्ष में भी अपने विजयध्वज को फहरा दिया है।

इसके विपरीत भारतीय चिन्तकों ने अपनी सामाजिक व्यवस्था में ऐसे संस्कारों को विकसित किया जो व्यक्ति की समस्त चराचर जगत के प्रति विनयशीलता की कहानी को कहता है।

संस्कारों के अध्ययन से यह विदित होता है कि प्राचीन भारत में प्रत्येक गृहस्थ के लिए यह अनिवार्य था कि पंच महायज्ञों को सम्पन्न करे। यह पंच महायज्ञ भारतीयों की नैतिकता, आध्यात्मिकता, प्रगतिशीलता एवं सदाशयता के प्रतीक थे। इनको सम्पादित करने के पीछे एकमात्र उद्देश्य था कि सारे विश्व के प्राणी एक ही सृष्टि-बीज के द्योतक हैं, अतः सब में आदान प्रदान तथा जियो और जीने दो का प्रमुख सिद्धांत कार्यरूप में परिणत रहना चाहिए।

अतः जीवन के सर्वोच्च आदर्श के उद्देश्य की सृष्टि से मानव की कल्पना करना आज की बड़ी आवश्यकता है। इस आधार पर एक ऐसे विश्वजनीन मानव की कल्पना करना है जो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक हो।

आज इस बात पर विचार किया जाना समय की आवश्यकता है कि मानव धर्म के मूलभूत विचार क्या हैं। क्योंकि आज का मानव राष्ट्रीय सीमाओं को त्याग कर समूचे विश्व से सम्पर्क स्थापित कर रहा है। आज का मनुष्य एक दूसरे से इतना अधिक निकट आ गया है, जितना इससे पहले कभी नहीं था और यह भी कम आश्चर्य की बात नहीं है कि स्थायित्व की पुरानी मान्यताओं के टूट-बिखर जाने और देश की सीमाओं में जबरदस्त फेरबदल हो जाने के बाद भी जैसे-तैसे मनुष्य मानवता के व्यापक सिद्धांत की परिधि मे सिमटता जा रहा है। व्यक्ति एक दूसरे की सहायता के लिए

मिलकर प्रयास करने लगे हैं। इसका एकमात्र कारण यह भावना है कि दूसरे लोग संकट में हैं। इस प्रकार की एकता की प्रेरणा वास्तव में मानव धर्म से सम्भव हो सकती है।

भारतीय चिन्तन परम्परा में विश्व को तत्वमसि का दार्शनिक विचार प्रत्येक व्यक्ति में एक ही आत्मा की अभिव्यक्ति का द्योतक है। मनीषियों ने इसी दार्शनिक विचारधारा को दया, अहिंसा आदि गुण प्राप्त करने का कारण बताया है। भारतीय चिन्तन में इस प्रकार से नैतिकता व तत्व दर्शन अर्थात् अध्यात्म को हम साथ-साथ चलते हुए देखते हैं। दक्ष का यह कथन कि यदि कोई "आनन्द चाहता है तो उसे दूसरे को उसी दृष्टि से देखना चाहिए, जिस दृष्टि से वह स्वयं को देखता है", मानव धर्म के मूलभूत विचार के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

यूरोपीय चिन्तन ने विज्ञान के द्वारा यह प्रतिपादित किया है कि रहस्यानूभूति से किस प्रकार पीछा छुड़ाया जा सकता है और किस प्रकार इस ब्रहाण्ड की क्रिया-प्रतिक्रियाओं को समझा जा सकता है।

जेकब ब्रोनावस्की के शब्दों में, "सत्य के रूप में अनुभूत तथ्य से प्राप्त अधिकार ही वह मुख्य शक्ति है जिसने हमारी सभ्यता को पुनर्जागरण काल से अब तक आगे बढ़ाया और उसका संचालन किया है।" परन्तु अनुसन्धान प्रयोगशालाओं से व्यावहारिक लाभ उठाने की होड़ में विज्ञान की इस बुनियादी प्रतिज्ञा को विस्मृत कर देने के कारण विज्ञान पथभ्रष्ट हो गया है।

यहां पर डॉ. हेजेन बर्ग के मत का प्रतिपादन करना काफी युक्तिसंगत होगा। उनके अनुसार मन,प्रेम और ईश्वर जैसी मान्यताएं मनुष्य के दीर्घकालीन अनुभवों के बाद विकसित हुई हैं और ये मानव जाति की प्राकृतिक भाषा के अंग हैं तथा इनका 'वास्तविक से सीधा सम्पर्क' है।

अत: मानव जीवन के लक्ष्यों को पूर्णत: प्राप्त करने हेतु प्राकृतिक विज्ञान का सम्बन्ध 'तत्वमसि' की दार्शनिक विचारधारा से जोड़ना होगा।

पृथ्वी के विभिन्न भू-भागों पर विकसित हुई मानव संस्कृतियों को तीन कारणों के रूप में देखा जा सकता है – अखिल मानवीय, सामूहिक वैयक्तिक। सामूहिक और वैयक्तिक रूप से विभिन्न संस्कृतियो से विकसित हुए व्यक्तियों में भिन्नता होना आवश्यक है। परन्तु प्रत्येक संस्कृति के अखिल मानवीय स्वरूप में समानता होती है। अत: यदि उस कारक को प्रधान मानकर भावी मानव जीवन का लक्ष्य प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया जाए तो मानव विकास के सार्वभौम लक्ष्य की स्थापना की जा सकती है।

ऐतिहासिक दृष्टि से मानव विकास की प्रक्रिया में विभिन्न युगों ने मानव को प्रभावित किया है। आदिम युग से अब तक के सभी युगों में शिक्षा को समुचित स्थान नहीं प्राप्त हो सका है। लेकिन यह दृष्टि भारतीय संदर्भ में सत्य नहीं है। यूरोप में गत पचास वर्षों में शिक्षा को दो आदर्शों ने प्रमुख रूप से प्रभावित किया है : प्रथम, सबके लिए शिक्षा की समान सुविधाएं उपलब्ध करना; द्वितीय, व्यक्ति को अपना विकास करने के लिए हर सम्भव अवसर प्रदान करना।

भारतीय संदर्भ में अति प्राचीन काल से ही शिक्षा का उद्देश्य निश्चित हो गया था। भारतीय शिक्षा पद्वति का उद्देश्य विद्यार्थी में किसी भांति विवेक बुद्धि को जाग्रत करना था, जिससे वह अपने स्वरूप को भलीभांति पहचान सके और तदानुकूल कार्य करता हुआ उस कार्य को करने के लिए इस भांति सफलता अर्जित कर ले, जिसको देखकर सब कोई बार-बार 'सत्यं शिवं सुन्दरम' कहकर उसका अभिवादन करे।

श्रृग्वेद में मनु को मानव-जाति का पिता कहा गया है। एक वैदिक

कवि ने स्तुति की है ताकि यह मन के मार्ग से च्युत न हो। मनुस्मृति में मनु ने धर्मशास्त्र एवं अर्थशास्त्र के समस्त विषयों को लिया है। मनु ने मानव जीवन के सभी पक्षों का चिन्तन किया है। — और यह चिन्तन स्वयं में इतना परिपूर्ण है कि इस आधार पर मानव धर्म व समाज की परिकल्पना सम्भव हो सकती है। संक्षेप में मनु ने वर्ण, धर्म, गृहस्थ की जीवन-विधि एवं वृत्ति, राजधर्म, न्याय शासन, पति-पत्नी के व्यवहारानुकूल कर्तव्य, दान स्तुति और कर्म का विवेचन किया है। भारतीय चिन्तन में जीवन के व्यवस्थित संचालन हेतु मनीषियों ने पुरूषार्थ के मार्ग का अनुसरण करने का आदेश दिया है। पुरूषार्थो की संख्या चार है : धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष; जिनमें अन्तिम तो परम लक्ष्य है, जिसकी प्राप्ति जिस किसी को ही हो पाती है, अधिकांश के लिए यह केवल आदर्श मात्र है। इन चारों पुरूषार्थो के पालन हेतु चार आश्रमों की व्यवस्था भारतीय सामाजिक व्यवस्था का एक विशिष्ट गुण है। अन्तिम पुरूषार्थ मोक्ष की व्याख्या करते हुए न्याय सूत्र में कहा गया है कि मोक्ष सर्वोत्तम लक्ष्य है तथा जिसे कई नामों से पुकारा जाता है : यथा मुक्ति, अमृतत्व, निःश्रेयस। केवल इसकी प्राप्ति के लिए व्यक्ति को निर्वेद एवं वैराग्य धारण करना चाहिए। काम को सबसे निम्न श्रेणी का पुरूषार्थ माना गया है, इसे केवल मूर्ख ही सर्वोत्तम पुरूषार्थ मानते हैं। परन्त् धर्मशास्त्रकारों ने सर्वथा ही भर्त्सना नहीं की है। वे काम को मानव की क्रियाशील प्रेरणा के रूप में ग्रहण करते हैं।

कौटिल्य का मत है कि धर्म एवं अर्थ के अविरोध में काम को त्राहि करनी चाहिए। किन्तु अपनी मान्यता के अनुसार कौटिल्य ने अर्थ को ही प्रधानता दी है। क्योंकि अर्थ से ही धर्म एवं काम की उत्पत्ति होती है। महाभारत में आया है कि एम समझदार व्यक्ति धर्म, अर्थ, काम — तीनों पुरूषार्थों को प्राप्त करता है, किन्तु यदि तीनों की प्राप्ति न हो सके तो वह

धर्म एवं अर्थ प्राप्त करता है। — और यदि उसे केवल एक को ही चुनना है तो वह धर्म का चुनाव करता है। धर्म शास्त्रकारों ने इस प्रकार आसन्न एवं परम-लक्ष्यों एवं प्रेरणाओं की ओर संकेत किया है और अन्त में परम लक्ष्यों एवं प्रेरणाओं को ही श्रेष्ठतम माना है। मनु ने अरस्तु के समान ही सभी क्रियाओं के पीछे कोई अनुमानित या पूर्वकल्पित शुभ या कल्याण को मान लिया है। इन्होंने कहा है कि प्रत्येक जीवन वासनाओं की ओर झुकता है, अतः इन पर बल देने के स्थान पर उनके विग्रह पर बल देना चाहिए।

शिक्षा को परम सत्य को समझने का एकमात्र साधन माना गया है। इसकी पुष्टि शिक्षा के ऐतिहासिक अध्ययन से होती है। यूरोप में ऐसी शिक्षा के केन्द्र गिरजाघर व विश्वविद्यालय थे और उन्हीं पर निर्भर था कि वे जितने भी सामान्य मनुष्यों को लैटिन और ग्रीक वैज्ञानिक, धार्मिक सत्य के उच्च क्षेत्रों तक पहुंचा सकते हैं, पहुंचाएं। उस शिक्षा का परिणाम हुआ कि संस्कृति व जनता के दैनिक जीवन के मध्य एक अथाह खाई बन गई। भारतीय संदर्भ में उपनयन संस्कार से यह ज्ञात होता है कि शिक्षा केवल एक विशेष वर्ग ही प्राप्त कर सकता था तथा उसे भी एक विशिष्ट संस्कार में दीक्षित होना पड़ता था। प्रारम्भ में संस्कृत भाषा सामान्य जन की भाषा थी और समाज में वर्ण विभाजन अधिक जटिल भी नहीं था। उस समय सम्भवतः सामान्यजन शिक्षा से वंचित नहीं था। धीरे-धीरे संस्कृत ने पुरोहित वर्ग की विशिष्ट भाषा का स्थान ग्रहण कर लिया तथा सामान्य जन को अपने प्रत्येक कार्य के लिए इस वर्ग पर निर्भर रहना आवश्यक हो गया।

भाषा व ज्ञान की विशिष्टता के इस स्वरूप को बौद्ध धर्म ने खण्डित किया। गौतम बुद्ध ने सामान्यजन की भाषा का अपने ज्ञान के प्रसार हेतु उपयोग किया। उन्होंने शिक्षा को सामान्य जन तक पहुंचाया तथा उसे

समाज शिक्षण का एक उपकरण बनाया।

परन्तु विदेशी आक्रमणों के कारण यह सुखद स्थिति अधिक समय तक कायम नहीं रह सकी। यूरोप में वयस्क शिक्षा का प्रारम्भ प्रजातंत्र के साथ हुआ। भारत भी ब्रितानी साम्राज्यवाद का अंग होने के कारण इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। आज से सौ वर्ष पूर्व डेनमार्क में गुन्तविग ने वयस्क शिक्षा के महत्व को समझने के पश्चात ही पूर्णत: नवीन पाठशालाएं, जनता विश्वविद्यालय की स्थापना की थी। उनका उद्देश्य यह था कि वयस्क शिक्षा की ऐसी संस्थाओं द्वारा ही धनी-निर्धन, ऊंच-नीच, ज्ञानी-अज्ञानी के बीच की खाई को पाटा जा सकता है। उनका मत था कि जनता विश्वविद्यालयों को चाहिए कि वे सामान्य आदमी को केवल बुद्धि और ज्ञान ही न दें, पर उस सामान्य मनुष्य के दैनिक जीवन व उसकी समस्याओं को भी विश्वविद्यालय में लाएं। उन समस्याओं का दैनिक वास्तविकता के आधार पर अध्ययन करें, उन्हें नवीन बनाएं तथा उनका नवनिर्माण करें। लोक उच्च्व विद्यालय ही जनता और नव-संस्कृति निर्माण करने वाले बुद्धिमानों के बीच की कड़ी होनी चाहिए, जिससे समस्त ऊंच-नीच समाप्त हो जाए और एक यथार्थ लौकिक सभ्यता का निर्माण हो।

वयस्क शिक्षा कोई व्यावसायिक शिक्षा नहीं है। इसका उद्देश्य अपने विद्यार्थियों को जीवन में उत्तम आरम्भ व नूतन पद प्रदान करना नहीं है। सैद्धांतिक रूप से तो वयस्क शिक्षा उनके लिए है जो जीवन में पहले ही काम धन्धा प्राप्त कर चुके हैं। अत: वयस्क शिक्षा का उद्देश्य उनके लिए अवसर उपलब्ध कराना है जो वहीं स्थिर रहेंगे जहां कि वे अब स्थित हैं।

वयस्क शिक्षा की दूसरी विशेषता इसका पूर्णत: स्वेच्छाकृत होना है। इन पाठशालाओं में वयस्क अपनी इच्छा से आता है। इसके अन्तर्गत

विद्यार्थी और शिक्षक समान होते हैं। लोकतन्त्र की सफलता की पहली आवश्यकता है कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक एवं राजनीतिक विषयों में सह-उत्तरदायित्व की भावना का अनुभव करे। वह आधुनिक समाज की उलझनों को समझ सके, जो जीवन में उद्देश्य और लक्ष्यों को निर्धारित करते हैं।

वयस्क और समाज शिक्षा में यह स्वीकार किया जाता है कि परिवर्तन समाज की एक आवश्यकता है। और राज्य एवं समाज एक दूसरे के परस्पर विरोधी तत्व हैं। सरकार स्थायित्व पर आशा बांधती है। परन्तु समाज प्रत्येक को इस आशा से छोड़ देता है कि उसमें एक दिन परिवर्तन भी आ सकता है। अत: प्रौढ़ शिक्षक के लिए मानव विरोधी प्रवृतियों का मिश्रण है, जो स्थायी रहता है और परिवर्तन को ध्येय मानता है। यौवन तथा वृद्धावस्था, वार्ता व मित्रता, शिक्षा व भेंट हमारे परिवर्तनशील आचरण को दर्शाते हैं, जबकि कानून व सम्पत्ति आदि हमारे जीवन के स्थायी पक्ष हैं। इस अर्न्तदृष्टि द्वारा वयस्कों को उचित पाठयक्रम की प्रथम सीढ़ी के विषय में ज्ञान होता है। स्पष्टत: वयस्क शिक्षण के कार्यक्रम में प्रौढ़ के सम्पूर्ण जीवन के ऊपर विचारना अपेक्षित है। अत: यह आवश्यक है कि वयस्क शिक्षा के पाठ्यक्रम के अन्तर्गत अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, आशुलिपि व भाषा तथा धर्म व राजनीति जैसे परस्पर विरोधों के बीच के विरोध को रचनात्मक बनाया जाए।

वयस्कों हेतु अध्ययन का उपयुक्त क्रम है — परिवर्तन परक सामाजिक, जिसके अन्तर्गत वयस्क शिक्षा है। स्थिरता परक राजनैतिक, जिसके अन्तर्गत राष्ट्रीय नियम और संविधान है और दोनों के मध्य का मार्ग है आध्यात्मिक। दो विश्व युद्धों के मध्य और पश्चात के समय में भोगे गए कष्टों ने मानव में एक संसार की भावना को वास्तविकता का रूप दे दिया

है। यूनेस्कों ने इसको प्रामाणिकता दी है तथा यह विश्व अन्तरनिर्भरता की मान्यता का चिन्ह है।

प्रौढ़ शिक्षा एक ऐसे आन्दोलन के रूप में आज अग्रसर हो रहा है जो एक नव-अन्र्तराष्ट्रीयतावाद का प्रतीक बन गया है। आज वयस्क शिक्षा से सम्बद्ध प्रत्येक व्यक्ति उन अभिशापों से परिचित है जिनसे वयस्क ग्रस्त है। यहां पर यह भी बताना युक्तिसंगत होगा कि वयस्क शिक्षा आन्दोलन से पूर्व निर्धनता, निरक्षरता, बाल मृत्यु, खराब स्वास्थ्य, शोषण आदि कठिनाइयां विश्व स्तर पर इतनी अधिक कभी भी अन्तर-सम्बन्धित नहीं थीं, जितनी आज हैं।

वयस्क शिक्षा नव-अन्र्तराष्ट्रीयतावाद का केन्द्र बिन्दु बन गयी है और विश्व स्तर पर समस्त मानव समुदाय को जोड़नेवाली एक कड़ी है। अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि वयस्क को आधुनिक ज्ञान विज्ञान और अध्यात्म के उस परम सत्य की अनुभूति करने हेतु प्रेरित किया जाए जो विश्व बन्धुत्व की भावना को विकसित करने में उत्प्रेरक का कार्य कर सकते हैं।

बेहतर जीवन व शिक्षा की अनिवार्यता

अच्छा जीवन जीने के लिये जिन मुख्य बातों की आवश्यकता होती है, उनमें शिक्षा का अपना महत्व है। जिस क्रिया के माध्यम से हम अच्छे बुरे का निर्णय करते है, हानि-लाभ के अन्तर को स्पष्ट करते हैं, व्यक्ति में समझ पैदा करने वाली इसी धारणा को हम शिक्षा कहते हैं। दूसरे अर्थ में किसी वस्तु के गुण दोषों को ध्यान में रखकर उसका उपयोग करना योग्यता है और जिस क्रिया से व्यक्ति में योग्यता का निरन्तर विकास संभव हो उसे हम शिक्षा की संज्ञा देते हैं।

शिक्षा का मतलब सिर्फ पाठशालाओं में पढ़ना भर नहीं है और न महाविद्यालयों की उपाधि पा लेना मात्र है बल्कि आम जीवन में अनुभव के आधार पर व्यक्तित्व का विकास करना भी शिक्षा का अंग है, जिससे अधिक से अधिक लोगों को लाभ मिले, व्यक्तित्व प्रखर हो और भविष्य उज्जवल बन सके। इस तरह यह बड़ी आसानी से समझा जा सकता है कि व्यक्ति की उन्नति के लिये शिक्षा की उपयोगिता दूसरे जीवनदायिनी साधनों से किसी भी रूप में कम नहीं है। ज्ञान के क्षेत्र में विशिष्टता हासिल करने वाले विद्वान शिक्षा के अभाव वाले जीवन को पूर्ण जीवन नहीं मानते।

महान दार्शनिक अरस्तू का कहना है – 'शिक्षित व्यक्ति अशिक्षित से उतना ही श्रेष्ठतर है जितना जीवित मृत से।' शिक्षा व्यक्ति के व्यवहार और रहन-सहन को परिष्कृत करती है एक अन्य विद्वान का मानना है – "शिक्षा बालकों का सुन्दर संयम, वृद्ध की सांत्वना, निर्धन का धन और धनवान का आभूषण है," शिक्षा के महत्व के बारे में ये भी कहा गया है – "शिक्षा विकास का वो क्रम है जिसके द्वारा मनुष्य स्वयं को विभिन्न रूपों आवश्यकतानुसार भौतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक वातावरण

के अनुकूल बनाता है।" ये सारी बातें, ये सारे विचार इस तथ्य को स्पष्ट करते हैं कि व्यक्ति और समाज विकास के लिये शिक्षा महत्वपूर्ण हैं।

किसी भी उपयोगी बात को अपनाने के लिये हमें अपने सामर्थ्य के अनुसार काम निश्चित ही करना चाहिये और जहां तक पढ़ाई की बात है, इसके प्रति पूरी श्रद्धा दिखानी चाहिये। हमारा देश बहुत बड़ा देश है। चाहे इसे आकार में जनसंख्या की दृष्टि से देखें या फिर खनिज सम्पदा के पक्ष को लेकर बात करें, हमारे देश की विशालता साफ दिखाई देती है। लेकिन ये भी गौर करने की बात है कि हम विश्व के कई छोटे देशों से पिछड़े हुए हैं। हम क्यों पिछड़े हुए हैं यदि इसके कारणों को ढूंढने की कोशिश करें तो एक बड़ा कारण देश में उपयुक्त शिक्षा के अभाव का मिलता है। यदि हम अपने देश मे स्तरीय शिक्षा के आधार को लेकर कोई सर्वेक्षण करें तो पता चलेगा कि एक बहुत बड़ी आबादी ऐसी है जिसका शिक्षा से सम्बन्ध बहुत दूर का है। यही कारण है कि हम प्रत्येक क्षेत्र में पर्याप्त विकास को नहीं पा सके हैं।

हांलाकि साक्षरता के मामले में हम अब उन देशों में शामिल हो गये हैं जिनकी आधी से ज्यादा आबादी साक्षर है। अब हमारी ५२.१% आबादी साक्षर है। लेकिन प्रतिशत के लिहाज से पिछले दशक में साक्षरता वृद्धि दर गिरी है। १९७१-८१ में साक्षरता की वृद्धि दर ९.११% थी, जबकि १९८१-९१ में यह ८.५५% रही।

बहरहाल महिलाओं से सम्बन्धित आंकड़ों में हमारी स्थिति अब भी खराब ही है। पुरूषों की तुलना में महिलाओं की संख्या का अनुपात गिरा है। साक्षरता के मामले में भी वे पुरूषों से पीछे हैं। सन् १९८१ में प्रति १००० पुरूषों पर जहां ९३४ महिलाएं थीं अब केवल ९२९ रह गई हैं। पुरूषों की साक्षरता का प्रतिशत जहां ६३.६८ तक पहुंच गया है, महिलाएं

३९.४२% पर अटकी हैं।

जनसंख्या आंकड़ों के अनुसार गांवों से शहरों की ओर पलायन के कारण महाराष्ट्र पश्चिम बंगाल मध्यप्रदेश जैसे राज्यों की संख्या बढ़ी है। इसलिये ग्रामीण इलाकों और छोटे शहरों में रोजगार के अधिक से अधिक अवसर पैदा कर तथा विकास के विकेन्द्रीकरण से कुछ सीमा तक शहरी आबादी में बढ़ोतरी को धीमा किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि गांव से शहर की ओर होने वाले पलायन को नियमित और नियोजित करने से न सिर्फ शहरों को दम घुटने से बचाया जा सकेगा, बल्कि अगले कुछ वर्षों में ग्रामीण इलाकों में विकास के अवसर भी पैदा किये जा सकेंगे।

शिक्षा के अभाव में निरक्षर लोगों ने परिवार नियोजन के महत्व को नहीं जाना और देश की आबादी निरन्तर बढ़ती गई। अधिक जनसंख्या ने गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी व अपराध प्रवृति को बढ़ावा दिया।

शिक्षा के व्यापक अभाव से धार्मिक संकीर्णता रूढ़िवादी ईर्ष्या, द्वेष, साम्प्रदायिक वैमनस्य की भावना बढ़ी। जिससे नैतिक मूल्यों का पतन होता रहा।

यद्यपि सरकार तथा अन्य शिक्षक संगठनों द्वारा शिक्षा माध्यमों से भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। यह शिक्षा का प्रताप है कि हमारा देश तकनीकी क्षेत्र में विश्व के विकसित राष्ट्रों के साथ कदम मिलाकर चलने में सक्षम हो रहा है। विज्ञान के क्षेत्र में तरक्की की है। शिक्षा के जरिये समाज में गिरते नैतिक मूल्यों को पुर्नस्थापित किया जा रहा है और उसमें काफी सफलता मिली है। ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा के प्रयास से ग्रामवासियों में चेतना आई है तथा वे रूढ़िवादी संस्कारों को त्यागने लगे हैं।

शिक्षा सामाजिक परिवर्तन और आधुनिकीकरण का एक सशक्त साधन है। यदि समाज के अधिकांश लोग पढ़ लिख जाएं तो उनमें इच्छाएं और अविष्कार की प्रवृत्तियां अवतरित होंगी और उनकी पूर्ति के लिये नये साधनों का विकास होगा।

शिक्षा के द्वारा मनुष्य आत्म नियन्त्रण सीखता है और अनुशासन प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त वह उन सभी बातों को सीखता है जो उसे समाज में रहने योग्य बनाती है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि जिस समाज में, जिस देश में शिक्षा का जितना उच्च स्तर होगा, वहां उन्नति की रफ्तार भी उतनी ही तेज होगी। इसलिये हर अभिभावक का ये दायित्व बन जाता है कि बच्चों को उपयुक्त शिक्षा दिलाने में अपनी पूरी जिम्मेदारी निभायें और बच्चों के भविष्य के प्रति न्याय करें। प्लेटो ने शिक्षा को बच्चों में सद्‌गुणों का निर्माण कहा है शिक्षा व्यक्ति को इस योग्य बनाती है कि वो अपनी समस्त जीवन क्रियाओं को उचित रीति से सम्पादित कर सके। इसलिये भी जीवन में शिक्षा की आवश्यकता होती है।

शिक्षित जनता ही प्रजातन्त्रीय राष्ट्र का निर्माण कर सकती है

भारत में प्रौढ़ शिक्षा की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। यह उतनी ही पुरानी है, जितनी स्वयं हमारी सभ्यता जहां तक आधुनिक युग की बात है, इसकी शुरूआत मैसूर और बडोदरा जैसे देशी रजवाड़ों से हुई और १९८८ में यह 'राष्ट्रीय साक्षरता मिशन' तक अपना सफर तय कर चुकी है। इस दौरान इसके नाम, काम, क्षेत्र, नीति, कार्यक्रम और दृष्टिकोण — इन सभी में यहां तक कि इसकी संकल्पना में भी परिवर्तन आए हैं और अनेक प्रयोग किए गए हैं। अब इस नयी राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा नीति (राष्ट्रीय साक्षरता मिशन) के अन्तर्गत सन् १९९५ तक सम्पूर्ण राष्ट्र को साक्षर करने का संकल्प लिया गया है। इसके उददेश्यों की भूरि-भूरि प्रशंसा की जानी चाहिए क्योंकि इसमें 'समयबद्ध' तथा 'लक्ष्य-आधारित' कार्यक्रम का समावेश किया गया है।

इस कार्यक्रम में साक्षरता में आत्म-निर्भरता, अपनी गरीबी और पिछड़ेपन से सचेत होकर अपनी आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति को बेहतर बनाने के लिए संगठित होकर सक्रिय सहभागिता के लिए आगे आना, अपनी आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाने के लिए कला कौशल में दक्षता प्राप्त करना, समाज में वैयक्तिक विकास करने के लिए राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करना, छोटे परिवार के दृष्टिकोण को अपनाना, आसपास के पर्यावरण को स्वास्थ्यपरक बनाना, महिलाओं को पुरूषों के समान अधिकार दिलाना आदि मुद्दों को शामिल किया गया है। दरअसल, कार्यात्मक साक्षरता का उद्देश्य केवल अक्षर ज्ञान कराना ही नहीं है, बल्कि इसके माध्यम से लोगों को आर्थिक विकास के मार्ग पर अग्रसर करना है।

प्रौढ़ शिक्षा समेकित-विकास के रूप में -- हम सब जानते हैं कि हमारे निरक्षर प्रौढ़ मात्र अक्षर-ज्ञान प्राप्त करने के इच्छुक नहीं होते। ये कला कौशल सीखकर रोजगार के क्षेत्र में आगे बढ़ना चाहते हैं। समाज में अपना सम्मानजनक स्थान पाना चाहते हैं। अत: हमें प्रौढ़ शिक्षा को कार्यात्मकता से जोड़कर इसे सामाजिक तथा आर्थिक उत्थान का अंग बनाना पड़ेगा। प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम को राष्ट्रीय विकास की योजनाओं से जोड़ना होगा, तभी इसकी सफलता मिलेगी।

आज भी हमारे देश की अधिकांश जनता गरीबी और पिछड़ेपन का शिकार है। अत: वह साक्षरता अभियान किस काम का जो इस समस्या को हल करने की अपने अन्दर क्षमता न रखता हो। अत: प्रौढ़ शिक्षा अथवा साक्षरता अभियान को प्रत्यक्ष रूप से या अन्य एजेंसियों की मदद से आय-उत्पादन करने वाले कार्यकलापों के साथ जोड़ना ही होगा।

शैक्षणिक संस्थाओं की भूमिका -- सीमित साधनों के बावजूद हमें प्रौढ़ शिक्षा अभियान में स्वैच्छिक संस्थाओं की मदद लेनी ही होगी। ग्रामीण स्कूलों को अपनी चार दीवारी से बाहर निकल कर गांव के आम बच्चों को अनौपचारिक शिक्षा तथा प्रौढ़ों को प्रौढ़ शिक्षा प्रदान करने के लिए आगे आना होगा। गांवों से निरक्षरता मिटाने के लिए उन्हें सक्रिय होना ही पड़ेगा। इसके लिए स्कूलों के अध्यापकों को उनकी वर्तमान जिम्मेदारियों को निभाने के साथ-साथ उन्हें अनौपचारिक एवं प्रौढ़ शिक्षा का कार्यक्रम चलाने के लिए प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। विश्वविद्यालयों में तथा महाविद्यालयों के शिक्षकों तथा छात्रों को भी इस अभियान में भागीदार बनाना होगा। केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड ने इसकी शुरूआत की है। बोर्ड ने अपने पाठ्यक्रम में निरक्षरों को साक्षर बनाने के विषय को शामिल किया है। देश के अन्य बोर्डों को भी सक्रिय रूप से ऐसा कदम

उठाना चाहिए। बालकों को इस दिशा में प्रोत्साहित करने के लिए परीक्षा में अतिरिक्त अंक देने का प्रावधान रखना चाहिए। इसके बिना छात्र कोई रूचि नहीं लेंगे।

महिलाओं के लिए प्रौढ़ शिक्षा -- आज हमारे देश में निरक्षर महिलाओं की जो संख्या है उससे हम परिचित हैं। कोई भी देश और उसका प्रजातन्त्र तथा मानव-समुदाय उस समय तक उन्नति या विकास नहीं कर सकता जब तक वहां की महिलाएं शिक्षित न हों।

महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक तथा कानूनी एवं संवैधानिक अधिकार और बराबरी का दर्जा दिलाने के लिए, उन्हें आत्मनिर्भर बनाने के लिए शिक्षित करना ही होगा। इसकी पहल निरक्षर महिलाओं को साक्षरता अभियान में सक्रिय रूप से शामिल करके की जानी चाहिए। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस मुद्दे को सर्वाधिक महत्व दिया जाना चाहिए।

स्वैच्छिक प्रयास -- प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में स्वैच्छिक संस्थाओं ने जो ऐतिहासिक भूमिका निभायी है, उससे हम सब परिचित हैं। अब भी उनका भरपूर सहयोग एवं लाभ लिया जाना चाहिए। चूंकि सरकार ही प्रौढ़ शिक्षा कार्य के लिए वित्तीय सहायता देती है, अत: उसे स्वैच्छिक संस्थाओं को भरपूर वित्तीय सहायता देने के लिए आगे आना चाहिए। वैसे सम्मेलनों, विचार-गोष्ठियों और सार्वजनिक मंचों पर तो सरकार स्वैच्छिक संस्थाओं तथा उनके प्रयासों की सराहना और प्रशंसा करने में बढ़-चढ़कर भाग लेती हैं, लेकिन व्यवहार-रूप में उनका रवैया बेहद हतोत्साहित करने वाला होता है। फिलहाल तो इस सन्दर्भ में सरकार द्वारा कम से कम अवसर देना, अनुदान प्राप्त संस्थाओं को भयभीत करते रहना, उनके रोजमर्रा के कामकाज में टांग अड़ाना, अपनी अफसरशाही का रोब

जमाना आदि आम बात है। कोई भी जन-समुदाय मात्र सरकारी प्रयासों से आज तक सफल नहीं हुआ हैं, न कभी होगा। प्रौढ़ शिक्षा के सन्दर्भ में यह बात विशेष रूप से लागू होती है।

स्वैच्छिक संस्थाओं को अपनी भूमिका अच्छी तरह निभाने का अवसर सरकार को देना ही पड़ेगा। इस समय राष्ट्रीय साक्षरता मिशन में मात्र दस प्रतिशत अंश ही स्वैच्छिक संस्थाओं के लिए रखा गया है। यह स्थिति किसी दृष्टि से ठीक नहीं है। अपेक्षित सफलता के लिए इसे समाप्त करके अधिकाधिक अवसर देने की नीति बनानी होगी। स्वैच्छिक संस्थाओं को प्रशासनिक व्यय के लिए धन राशि नहीं देने की नीति को भी त्यागना पड़ेगा, तभी वे अपनी कठिनाई को हल करने में सफल होंगी।

सरकार द्वारा मुट्ठी भर स्वैच्छिक संस्थाओं को ही प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम में भागीदार बनाने का निर्णय भी अत्यन्त आपत्तिजनक है। उसे हर छोटी-बड़ी विश्वसनीय संस्थाओं की मदद लेनी चाहिए। हां, उन्हें दिये जाने वाले धन के सदुपयोग की जांच पड़ताल करने पर किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

सम्पूर्ण साक्षरता की निर्दिष्ट-राहें -- 'सम्पूर्ण साक्षरता' से तात्पर्य ८० से ८५ प्रतिशत साक्षरता से लिया जा रहा है। सम्पूर्ण साक्षरता के लक्ष्य को प्राप्त करने के कई तरीके या मार्ग हो सकते हैं। मेरे विचार में, इसके लिए 'केन्द्र आधारित' तरीका ही श्रेष्ठ है। माना कि इसमें पूर्ण सफलता नहीं मिल पाई है। इसमें अनेक खामियां एवं कमजोरियां रही हैं। हालांकि उन सब को दूर किया जा सकता है, लेकिन सरकारी मशीनरी ऐसा न करके नये मार्ग निकाल रही है।

'केन्द्र' के बजाय 'स्वयंसेवकों' को माध्यम बनाया जा रहा है। विश्वविद्यालयों तथा स्कूलों के छात्रों द्वारा एक सिखाए, एक को कार्यक्रम

पर पूरी ताकत लगाई जा रही है। परन्तु छात्रों द्वारा किये जा रहे इस कार्यक्रम की सफलता में पूर्ण विश्वास नहीं किया जा सकता। 'राष्ट्रीय साक्षरता मिशन' के दस्तावेज में केन्द्र आधारित साक्षरता शिक्षण कार्यक्रम में ५६ प्रतिवेदन प्रस्तुत किये गए हैं, उनमें दो सौ और खामियों को तो गिनाया गया है परन्तु उनके कारणों तथा समाधान के लिए उपाय नहीं बताये गये हैं। फलतः कुल मिलाकर मात्र भ्रम पैदा करने की स्थिति बना दी गई है। राष्ट्रीय साक्षरता मिशन में पूर्वनिर्धारित कार्य-प्रणाली तथा बजट में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है, अतः लगता है कि इसमें प्रौढ़ शिक्षा की भावी क्रियान्विति में कोई कारगर तेजी नहीं आएगी।

मेरे विचार में कोई एक पद्धति, उपाय, तरीका अथवा कार्यप्रणाली ही सर्वश्रेष्ठ है, यह मान्य तथ्य नहीं है। प्रौढ़ों को अलग समूहों और क्षेत्र विशेष के हालात के आधार पर ही कार्य प्रणाली को लागू किया जाना चाहिए। जहां जो कार्य-प्रणाली अधिक लाभदायक समझी जाए वहां उसका उपयोग किया जाए। जहां 'केन्द्र आधारित' प्रणाली ठीक लगे वहां 'जन अभियान' प्रणाली ठीक लगे वहां, और जहां 'एक सिखाए एक' प्रणाली ठीक लगे वहां उसे प्रयोग में लाया जाना चाहिए।

उत्तर साक्षरता तथा सतत शिक्षा -- नवसाक्षरों को साक्षर बनाने के बाद उन्हें 'उत्तर साक्षरता' कार्यक्रम से जोड़ना अति आवश्यक है, क्योंकि इसके अभाव में उनके पुनः निरक्षर हो जाने का खतरा है। महाराष्ट्र की 'ग्राम शिक्षण मुहिम' की मिसाल हमारे सामने है।

साक्षरता मुहिम शुरू करते समय ही उत्तर साक्षरता की आवश्यकता का भी खाका बना लेना चाहिए। अच्छा तो यह होगा कि साक्षरता शिक्षण तथा उत्तर साक्षरता, के लिए समयबद्ध कार्यक्रम शुरू में ही बना लिया जाए। केरल राज्य के 'सम्पूर्ण साक्षर' हो जाने की तो घोषणा हो चुकी है,

परन्तु वहां उत्तर साक्षरता का कार्यक्रम अभी तक शुरू नहीं किया गया। इससे नवसाक्षरों का पुनः निरक्षर हो जाना असंभव नहीं है।

'जन शिक्षण निलयम' की योजना इस क्षेत्र में लाभदायक एवं कारगर योजना है। हर गांव में इसकी स्थापना की जानी चाहिए। साथ ही यह जरूरी है कि इसके सफल संचालन के लिए 'पूर्णकालीन' प्रेरक रखे जाएं। वर्तमान अंशकालीन प्रेरकों को नाममात्र मानदेय में रखकर इसका संचालन करवाना लाभदायक सिद्ध नहीं होगा।

हमारी समस्या मात्र निरक्षरों को अक्षर ज्ञान कराना अथवा कुछ अंकों की गिनती सिखा देना मात्र नहीं है। हमें तो उन्हें अपने व्यक्तित्व का विकास करने के योग्य बनाना है, उन्हें उनकी क्षमताओं को जानने तथा उनकी मदद से समाज में अपना स्थान पाने योग्य बनाना है।

कुल मिलाकर प्रौढ़ शिक्षा मुट्ठी भर लोगों का काम नहीं है। यह सारे राष्ट्र का काम है। आज बड़ी जरूरत राष्ट्र को एक संगठित एवं मजबूत राष्ट्र बनाने की है। राष्ट्र को खण्ड-खण्ड विभाजित होने से बचाना है। प्रौढ़ शिक्षा इस सन्दर्भ में एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम है। यहां यह बताना उचित समझता हूँ कि शिक्षित जनता ही एक स्वस्थ तथा सुन्दर प्रजातन्त्रीय राष्ट्र का निर्माण कर सकती है। अतः राष्ट्र के हर नागरिक को शिक्षित करना ही होगा। इसके लिए अनेक कदम उठाये जा सकते हैं। उदाहरण के लिए राजस्थान में 'पंचायत राज' की योजना में सरपंच के चुनाव हेतु उम्मीदवार का साक्षर होना अनिवार्य कर दिया गया है। माना कि यह एक छोटा सा प्रयास था परन्तु इसी प्रकार के प्रयासों द्वारा सम्पूर्ण देश को शिक्षित बनाया जा सकता है।

भारतीय शिक्षा दर्शन के सन्दर्भ में वर्तमान शिक्षा

वर्तमान शताब्दी समाप्ति पर है। राष्ट्र ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद विगत ४८ वर्षों में समाज के प्रत्येक क्षेत्र में अच्छी प्रगति की है। विश्व में हमने अपना उचित स्थान बनाने का प्रयत्न किया है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय हमारा राष्ट्र कई सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक समस्याओं से ग्रसित था। देश की विकास यात्रा के साथ-साथ कई समस्याओं के समाधान का प्रयत्न किया गया तो साथ ही कई नई समस्याओं का भी जन्म हुआ है। समाज आज संक्रमण काल के दौर से गुजर रहा है। हम आज प्राचीन और अर्वाचीन के द्वन्द्व में उलझे हुए हैं। राजतन्त्रीय व्यवस्था की समाप्ति के बाद प्रजातंत्रीय व्यवस्था हमें मिली है। परन्तु केवल मात्र व्यवस्था बदलने से समाज नहीं बदलता। जनसाधारण के संस्कार, मनोवृति और काम करने के तौर-तरीके वही पुराने हैं। सरकार के तीनों अंगों व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका में जो लोग लगे हुए हैं उनका शिक्षण-दीक्षण और कार्य करने का तौर तरीका वही राजतंत्रीय व्यवस्था के जमाने का है। इसका मूल कारण आज के सन्दर्भ में उन्हें शिक्षित करने का अभाव रहा है। यह नहीं कहा जा सकता कि इसे दूर करने के कोई प्रयत्न नहीं हुए हैं — परन्तु आधे अधूरे मन से।

हम कैसा समाज चाहते हैं ? जिन व्यक्तियों से हमारा समाज बना है उन्हें कल्पित समाज के अनुकूल बनाना है। परन्तु सबसे महत्वपूर्ण बात समाज की कल्पना का स्पष्ट होना है। जनतंत्रीय समाज की बात हम सब करते हैं परन्तु जैसा जनतन्त्र आज हम देख रहे हैं और भुगत रहे हैं — यदि यही सच्चा जनतन्त्र है तो हमें ऐसा जनतन्त्र नहीं चाहिये। सच्चा जनतंत्र जनता के लिये, जनता के द्वारा और जनता का होता है, वर्तमान जनतन्त्र

क्या इस कसौटी पर सही उतरता है ? महान दार्शनिक अरस्तु के अनुसार यदि जनतन्त्रीय प्रणाली मे जनता सुशिक्षित नहीं है और वह अपने मताधिकार का प्रयोग जनता के लिये नहीं कर स्वार्थ साधने हेतु करती है तो उसे जनतंत्र कैसे कहा जा सकता है ? वोटों की खरीद फरोख्त में आर्थिक प्रभाव, धार्मिक शोषण, अपराधी तत्वों का वर्चस्व और शिक्षा का अभाव मुख्य कारण है। यही सब कुछ तो हमारे जनतन्त्र पर आज हावी हो रहे हैं। अरस्तु के अनुसार इस प्रकार के जनतन्त्र को विकृत प्रजातन्त्र ही कहा जायेगा जो जनता का नहीं हैं जो जनता के लिये नहीं है और जो जनता द्वारा सही मायने में संचालित नहीं है। इस प्रकार के जनतन्त्र को जनतंत्र नहीं कह कर उसका राजनीतिकरण ही कहा जा सकता है।

भारत वर्ष के लिये आने वाली सदी को यही महान चुनौती है। शिक्षा प्रजातन्त्र के नींव का पत्थर है। आज समाज के प्रत्येक वर्ग के लिये अच्छी शिक्षा देने की बात करना आम रिवाज हो गया है। समाज के प्रत्येक नागरिक को समाज के भावी विकास और राष्ट्र की एकता और अखण्डता के लिये आदर्श नागरिक बनाने की दृष्टि से अच्छी शिक्षा मिलनी ही चाहिए इसमें दो राय नहीं हो सकती। परन्तु अच्छी शिक्षा से क्या तात्पर्य है?

शिक्षा का दर्शन वर्तमान संदर्भ में उसकी सार्थकता राष्ट्रींय शिक्षा नीति उसकी क्रियान्वित और पद्धति मूल्यांकन, शोध खोज आदि ऐसे बिन्दु हैं जिन पर विचार करना ही होगा। वर्तमान शिक्षा हमारे आज के समाज और राष्ट्र के अनुकूल है या नहीं इसे समझना होगा। भारत में आज जो शिक्षा का स्वरूप है उसका आधार ब्रिटिश शिक्षा व्यवस्था है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्ति को अक्षर ज्ञान और नौकरी प्राप्त करने के लिये प्रमाणपत्र देने का ही मुख्य उद्देश्य रहा है। इस शिक्षा ने हमारी प्राचीन शिक्षा व्यवस्था को सम्पूर्ण रूप से समाप्त किया है। उस समय की शिक्षा व्यवस्था का

मूल उद्देश्य मनुष्य को समुदाय और समाज का एक उपयुक्त नागरिक बनाना था। शिक्षा का उद्देश्य मानवीय मूल्यों और भारतीय संस्कृति के आधार पर समाज में भावनात्मक एकता बनाये रखना तथा राष्ट्र को स्थिरता अखण्डता और जनतन्त्रीय आधार को मजबूत करते हुए राष्ट्र का विकास करना रहा है। ब्रिटिश साम्राज्य के समय शिक्षा का प्रचार प्रसार तो बहुत हुआ। परन्तु उसका उद्देश्य कुछ और ही था। हमारे स्वतन्त्रता आन्दोलन के सभी अग्रणी नेता ब्रिटेन और अन्य पाश्चात्य देशों में ही शिक्षित हुए हैं। उन्होंने वहीं की जनतन्त्रीय परम्पराओं और नागरिकों की स्वतन्त्रता और राष्ट्रीय विकास में उनकी भागीदारी को समझा और उससे प्रेरणा प्राप्त कर भारतवर्ष में उसी की प्राप्ति के लिये आन्दोलन चलाया। इसे विधि की विडंबना ही कहा जायेगा कि जो कुछ इन देशों के नागरिकों को प्राप्त था उससे अपने अधीन देशों के नागरिकों को वंचित रखना तथा उन्हें और उन राष्ट्रों को उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये केवल मात्र साधन की तरह उपयोग में लाना कहां तक उचित था ?

अपनी राष्ट्रीय और आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति और सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा के लिये दूसरे अधीनस्थ राष्ट्रों की संस्कृति, साधन सुविधाओं, प्रशासनिक तन्त्र और शिक्षा दर्शन को समाप्त कर उसके मूल्यों को समाप्त करना और उनके सभी साधनों का अपने हित के लिये उपयोग में लाना क्या उचित था ? इन सभी बातों का हमारे नेताओं पर बहुत असर पड़ा। पाश्चात्य देशों में शिक्षित होकर उन्हीं उद्देश्यों के लिये और स्वतन्त्रता के लिये उन्होंने जी जान से स्वतन्त्रता के आन्दोलन में भाग लिया, देश के जनमानस को इसके लिये जागृत किया, उसमें राष्ट्रीय भावना पैदा की और आजादी की लड़ाई का अलख जगाया तथा उसे कान्ति का रूप दिया। महात्मा गांधी के नेतृत्व में यह आन्दोलन भारतीय दर्शन के अनुरूप सत्य,

अहिंसा, सहिष्णुता, धर्मनिरपेक्षता और मानवीय मूल्यों के आधार पर चलाया गया। विश्व के लिये यह आश्चर्य ही था कि भारत ने इसी आन्दोलन के द्वारा विश्व के तत्कालीन सबसे बड़े एवं शक्तिशाली साम्राज्य को अपने यहां से बिना खूनी क्रान्ति के शान्तिपूर्वक समाप्त करवा दिया। भारतीय मानवता की यह इस शताब्दी की एक महान उपलब्धि रही है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् राष्ट्र के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक वैज्ञानिक, तकनीकी, स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। भौतिक विकास निश्चित रूप से हुआ है परन्तु उसकी तुलना में मानवीय मूल्यों का ह्रास भी निरन्तर होता रहा है। हमारा जनतन्त्रीय आधार वास्तविक न होकर विकृत होता गया है। उसने अपने सैद्धान्तिक स्वरूप को खो दिया है। हमारा जनतन्त्र निरंतर मूल्य विहीन होकर व्यापार के रूप से चलाया जाने लगा है। उसमें वे सभी अपराधिक तत्व सम्मिलित होते गये हैं जिससे समाज का आधार ही कलुषित होने लगा है। हिंसा, गुंडागर्दी, खरीद-परोख्त आदि सभी कुछ तो हो रहा है। आज की राजनीति भले आदमियों की चीज नहीं रही है। यही कारण है कि अपराधिक तत्व राजनीति में आगे चलकर शासन पर हावी होते चले जा रहे हैं। यदि समय रहते इस पर गहराई से विचार कर उचित कदम नहीं उठाये गये तो हमारा भविष्य और भाग्य क्या होगा कहा नहीं जा सकता।

मेरी सम्मति में अच्छी शिक्षा ही इस समस्या के हल का एक सशक्त माध्यम हो सकता है। इसके लिये वास्तविक राष्ट्रीय शिक्षा नीति हमें बनानी होगी। स्वतंत्रता के बाद इस ओर कई प्रयास किये गये, कई आयोग बने और उनके प्रतिवेदनों के आधार पर कुछ कार्य भी हुआ परन्तु अभी भी हमारी संस्कृति, दर्शन और सामाजिक आवश्यकता के अनुसार पूर्ण रूप से उसे ढाला नहीं जा सका है।

भारतीय दर्शन में शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति का सर्वागींण विकास रहा है। शिक्षा का उद्देश्य केवल बौद्धिक विकास ही नहीं है जैसा कि सामान्यतः आज माना जा रहा है। व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में उसकी बुद्धि, ह्दय [संवेदनशीलता और मानवीय मूल्य] और श्रम [रोजगार और परिवार, समुदाय एवं सामाजिक उत्थान] आदि सभी का समान रूप से विकास है। शिक्षा को सिर्फ निश्चित अभ्यासक्रमों एवं विद्यालयों की कक्षाओं तक सीमित रखना कभी नहीं रहा। उसे प्रकृति, जनसमुदाय और समाज से जोड़े रखा गया। इस पद्वति का क्रियान्वयन आश्रमों द्वारा किया जाता रहा है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में हेड, हार्ट और हेंड्स की बात जब की जाती है तो उसका मतलब व्यक्ति के सर्वांगोण विकास की इसी परिकल्पना से है। स्वामी विवेकानन्द, गांधी, विनोबा आदि ने राष्ट्रीय शिक्षा का आधार इसी परिकल्पना और उद्देश्य को माना है। वर्तमान शिक्षा नीति में ज्ञान और काम का दृष्टिकोण इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये है जिसमें बौद्धिक विकास के साथ श्रम एवं मानवीय मूल्य और संवेदनशीलता का समावेश किया गया।

भारत हमेशा से कृषि प्रधान देश रहा है। तथाकथित उन्नत औद्योगिक राष्ट्रों के संगठित श्रम या केवल नौकरी के लिये डिग्री देने का शिक्षा का उद्देश्य हमारा नहीं हो सकता। यहां शिक्षा व्यक्ति, परिवार, समुदाय और समाज के समानान्तर विकास की कड़ी रही है। वह केवल व्यक्ति को अक्षर-ज्ञान देने तक ही सीमित नहीं रह सकती। वह व्यक्ति और उसके द्वारा समाज की उन्नति के साथ जुड़ी हुई है। यही कारण है कि भारत वर्ष का नागरिक अक्षरज्ञान के अभाव में भी जीवन की शिक्षा द्वारा समुदाय और समाज का विकास करता रहा है। नियमित और निश्चित अभ्यासक्रमों की पूर्ति करने वाले विद्यालयों, महाविद्यालयों, तकनीकी संस्थाओं के

अभाव में भी ग्रामीण स्तर पर अनौपचारिक माध्यमों के द्वारा घरेलु और आवश्यक कुटीर और छोटे धन्धों का ज्ञान नागरिकों को दिया जाता रहा है। इसका बहुत बड़ा लाभ यह था कि नागरिक शिक्षा के लिये गांव छोड़कर दूरस्थ स्थापित विद्यालयों में न जाकर ग्रामीण स्तर पर ही अपने धन्धों एवं समुदाय से जुड़े रहकर आवश्यक सामान्य ज्ञान प्राप्त करते रहे। नई शिक्षा नीति में इन महत्वपूर्ण बिन्दुओं का समावेश कर ग्रामीण स्तर पर नागरिकों को उचित शिक्षा दिये जाने का प्रयास रहा है।

उक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिये सार्वजनिक शिक्षण संस्थाओं, गैर-सरकारी शिक्षा संगठनों पंचायतराज संस्थाओं, सरकारी विभागों और सभी प्रमुख वर्ग का सहयोग और कार्य में समन्वय की आवश्यकता है। ये सभी एक-दूसरे के कार्यों में पूरक की भांति योगदान दें, तभी वांछित सफलता मिल सकती है।

कोठारी कमीशन और १९८६ को नई-शिक्षा नीति ने इस ओर अवश्य ही नया आधार दिया है। हमारी सरकार की प्राथमिकताओं में शिक्षा हमेशा ही नीचे के स्तर पर रही है। जबकि बिना अच्छी शिक्षा के नागरिकों को समाज के आदर्श नागरिकों की भांति तैयार किया ही नहीं जा सकता। हमारी राष्ट्रीय शिक्षा नीति में समाज, समुदाय और व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के आयाम सुनिश्चित होने चाहियें। वैज्ञानिक, तकनीकी और अन्य विषय पर विदेशों में जो शोध-खोज एवं कार्य हुए हैं उन्हें निश्चित ही अपनाना होगा। हम विश्व के अन्य देशों की तुलना में पीछे नहीं रह सकते और अच्छी चीज का आदान प्रदान होना ही चाहिए परन्तु उसे ग्रहण करते समय हमें अपना दार्शनिक और सांस्कृतिक आधार नहीं छोड़ना चाहिये। हमारी संस्कृति हमारी आत्मा है। यदि हमने उसे भुला दिया, छोड़ दिया या विकृत कर दिया तो हम स्वयं समाप्त हो जायेंगे या विश्व के शक्तिशाली

देशों के पिछलग्गू बन जायेंगे। अपनी संस्कृति ही प्रत्येक देश की अपनी पहचान होती है। आज तथाकथित शक्तिमान राष्ट्र कमजोर राष्ट्रों पर भौतिक दृष्टि से आधिपत्य नहीं कर उन्हें आर्थिक, तकनीकी और सांस्कृतिक आधार पर अपने वर्चस्व में लाने के प्रयत्न करते हैं। अतः हमें इस ओर सावधान रहना होगा!

राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं उसकी प्रगति

राष्ट्रीय शिक्षा नीति का आधार स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान हमारे देश के महान नेताओं ने हमें दिया है। तत्कालीन हमारे राष्ट नायक यह अच्छी तरह से जानते थे कि केवल भीड़ इकट्ठी करने मात्र से राष्ट्र में क्रान्ति नहीं लाई जा सकती। क्रांति का उद्देश्य स्पष्ट होना चाहिये। उसके लिये जनमानस को जागृत करना पड़ता है तथा उसके अनुकूल उन्हें शिक्षित करना होता है। इसके लिये व्यक्तियों को आश्रमीय शिक्षा के आधार पर जीवनोपयोगी शिक्षा देनी होगी। शिक्षा का आधार गुरू शिष्य और समुदाय के बीच जीवन्त समन्वय है। ये सभी एक दूसरे के पूरक के रूप में कार्य करते हैं। समाज की आवश्यकता के अनुरूप शिक्षा व्यवस्था में शिष्य समाज के एक अंग की भांति ही विकसित होता है।

आज की शिक्षा-व्यवस्था में स्वांत: सुखाय का दृष्टिकोण ज्यादा है। यह शिक्षा व्यक्ति को व्यक्तिवादी बनाती है। समष्टि और व्यष्टि में समन्वय नहीं है। इस शिक्षा व्यवस्था में व्यावसायिक आधार पर पृथक समूह उभर रहे हैं जिससे सामूहिक जीवन जीने की व्यवस्था बिखरने लगी है। लोग व्यवसाय और जीवन यापन के लिये तथा कार्य खोजने की दृष्टि से शहरों की ओर भाग रहे हैं। पुराने ग्रामीण धन्धे समाप्त हो रहे हैं जीवन स्तर को ऊंचा करने के नाम पर प्रत्येक ग्रामीण आधारित चीजों का परित्याग किया जा रहा है। ग्रामीण और कुटीर उद्योग एक प्रकार से समाप्त हो रहे हैं। प्रशासन की ग्रामीण व्यवस्था खत्म हो गई है। ग्राम्य संस्थाएं जो गांवों के विकास की धुरी थी, समाप्त कर दी गई हैं। पंचायतीराज का बुनियादी ढांचा सम्पूर्ण रूप से बदल गया है। सामूहिक जीवन शैली समाप्त सी हो गई है। यह सब कुछ वर्तमान शिक्षा और तथाकथित आधुनिक जीवन के

प्रति नई पीढ़ी के दृष्टिकोण का प्रतिफल है। भारतीय अस्मिता और आत्मा इस प्रकार धीरे-धीरे लोपित हो रही है। आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकी, विकास, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों और विश्व बन्धुत्व नागरिकों मे राष्ट्रीय चेतना, देश प्रेम, धार्मिक सहिष्णुता, सामाजिक समानता, धर्म निरपेक्षता और राष्ट्रीय अखण्डता आदि के लिये शिक्षा के माध्यम से तैयार करने का महात्मा गांधी के नेतृत्व में अनवरत रूप से कार्य किया। स्वतन्त्रता संग्राम हमारे लिये केवल अंग्रेजी-सामाज्य को भारत वर्ष से हटाने का राजनैतिक युद्ध नहीं था, वह एक सामाजिक जनक्रांति थी जिसके द्वारा नागरिकों को राष्ट्र के भावी नागरिक के रूप में तैयार करना था।

इस कार्य के लिये देशभर में जगह-जगह आश्रम पद्धति के आधार पर शिक्षा केन्द्रों की स्थापना की गई। महात्मा गांधी ने दक्षिण अफ्रीका से आने के बाद अहमदाबाद में साबरमती के तट पर एक आश्रम स्थापित किया। वहां उन्होंने राष्ट्र के लिये हजारों कर्मठ, परिश्रमी कार्यकर्ताओं को तैयार किया। इन कार्यकर्ताओं में गांधीजी के जीवन की अमिट छाप थी। स्वावलम्बन, सत्यनिष्ठा और अंहिसा की भावना उनमें कूट-कूट कर भरी हुई थी।

साबरमती के बाद गांधीजी ने वर्धा में अपना आश्रम स्थापित किया। वहां उन्होंने राष्ट्रीय शिक्षा नीति निर्धारण का कार्य और कई प्रयोग किये। शिक्षा की वर्धा स्कीम हमारी शिक्षा नीति का मूल आधार हो सकती है। बुनियादी शिक्षा ने जन साधारण के लिये ब्रिटिश काल की शिक्षा पद्धति से हटकर जन शिक्षण का नया आधार दिया परन्तु नौकरशाही के अंग्रेजियत की भावना एवं प्रभाव के कारण उसे मन, वचन और कर्म से स्वीकारा नहीं गया। वह हमारे देश का एक ऐसा समय था जबकि सारे राष्ट्र में गांधीजी की प्रेरणा से राष्ट्रीय शिक्षा के लिये अलग-अलग स्थानों पर कई प्रयत्न

किये गये और आदर्श शिक्षा संस्थानों की स्थापना हुई। राष्ट्रीय शिक्षा के क्षेत्र में अहम भूमिका एवं महत्वपूर्ण कार्य करने वालों में रवीन्द्रनाथ टैगोर, डॉ. जाकिर हुसैन, आचार्य नरेन्द्रदेव, डॉ. श्री मननारायण, प्रो. हिमायू कबीर, प्रो. राम मूर्ति, डॉ. डी. एस. कोठारी, श्री जे.पी. नायक, श्री ईश्वरभाई पटेल आदि कई प्रतिभाओं का योगदान रहा है। राजस्थान में भी ऐसी प्रतिभाओं की कमी नहीं रही। श्री हरिभाऊ उपाध्याय, श्री जनार्दनराय नागर, डॉ. मोहनसिंह मेहता, श्री हीरालाल शास्त्री, श्री भेरूलाल गेलड़ा, श्री दयाशंकर श्रोत्रिय, श्री प्रेमनारायण माथुर आदि अनेक रहे हैं।

इन सभी शिक्षाविदों ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति के निर्माण और उसके क्रियान्वयन का अपने-अपने स्तर पर अच्छा कार्य किया है।

१९८६ को नई शिक्षा नीति राष्ट्रीय आवश्यकताओं और अपेक्षाओं के अनुरूप एक सही कदम है। इस शिक्षा नीति के आधार पर देश में शिक्षा की कुछ प्राथमिकता प्राप्त हुई है। पहली बार राष्ट्र में शिक्षा के लिये राजनैतिक इच्छा शक्ति और संकल्प बना। केन्द्रीय सरकार ने सम्पूर्ण साक्षरता और सब के लिये शिक्षा का राष्ट्र-व्यापी कार्यक्रम देश भर में लागू करने की योजना बनाई। इसके लिये राष्ट्रीय साक्षरता मिशन की स्थापना की गई। इस मिशन के द्वारा राष्ट्र-व्यापी साक्षरता कार्यक्रम इस समय देश के ३७६ जिलों में चलाया जा रहा है। आशा है कि इस सदी के अन्त तक देश के सभी जिले इस कार्य-क्षेत्र के अन्तर्गत ले लिये जायेंगे।

सब के लिये शिक्षा प्राप्ति का लक्ष्य इस सदी के अन्त तक प्राप्त करना है। अत: सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा देने हेतु अनेक योजनाएं चलाई जा रही हैं। विशेषकर महिलाओं और बच्चियों की शिक्षा पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है। ग्रामीण पिछड़े और परिगणित वर्गों के लिये लोक जुम्बिश, शिक्षाकर्मी योजना, अनौपचारिक शिक्षा, सतत् शिक्षा, दूरस्थ शिक्षा योजना

आदि अनेक कार्यक्षेत्र लागू किये गये हैं।

केन्द्रीय सरकार इस सदी के अन्त तक सबके लिये शिक्षा और सम्पूर्ण साक्षरता के लक्ष्य की पूर्ति के लिये राज्य सरकारों को वित्तीय तकनीकी और सभी प्रकार की सुविधाएं प्रदान कर रही है। इसके लिये राष्ट्रीय प्रान्तीय और जिला स्तरों पर शिक्षा समितियों का गठन किया गया है और किया जा रहा है। स्वयंसेवी संस्थाओं का इन कार्यक्रमों में हर प्रकार से सहयोग प्राप्त किया जा रहा है। ब्लॉक और ग्राम्य स्तरों पर भी समितियों का गठन कर अधिक से अधिक लोगों को इन कार्यक्रमों से जोड़ा जा रहा है। इस प्रकार से शिक्षा के कार्य को जन क्रान्ति के रूप में आगे बढ़ाये जाने के सभी प्रयत्न किये जा रहे हैं।

शिक्षा के इस सारे परिश्रम में जो बात इस समय हमारे लिये चिन्ता का विषय है — यह है हिन्दी भाषी क्षेत्र में साक्षरता के प्रतिशत का कम होना। राष्ट्रीय साक्षरता के ५२.११ प्रतिशत की तुलना में हिन्दी भाषी राज्यों में यह पतिशत बहुत कम है। राजस्थान में साक्षरता का प्रतिशत ३८% के करीब है। यद्यपि राज्य सरकार इस समय शिक्षा के कार्य को प्राथमिकता के आधार पर आगे बढ़ा रही है। राजस्थान में सार्वजनिक शिक्षण संस्थाएं बहुत हैं जो राष्ट्रीय आंदोलन के समय से ही शिक्षा एवं सामाजिक उत्थान के कार्यक्रमों में लगी हुई हैं। इस समय भी वे शिक्षा के इस पुनीत कार्य में अपना पूर्ण सहयोग दे रही हैं। कई नई संस्थाएं भी प्रारम्भ हुई। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि हम सही रास्ते पर चल रहे हैं। परन्तु अभी बहुत कुछ करना है।

शिक्षा के लक्ष्य की पूर्ति में अभी भी बहुत सी बाधाएं हैं जिन्हें दूर करना होगा। उसके बिना शिक्षा और साक्षरता का यह आंदोलन जन आंदोलन नहीं बन सकेगा। खाना पूर्ति तो हो जायेगी परन्तु वास्तविक

सफलता प्राप्त नहीं हो सकेगी।

मेरी दृष्टि से निम्न बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है —

१. अभी भी जन-साधारण शिक्षा को अपने लिये आवश्यक नहीं मानता। उसके लिये उसका महत्व अभी भी नगण्य है। इसके लिये जनचेतना का अभाव है — जिसे बढ़ाना होगा। चेतना के साथ-साथ शिक्षा के लिये मानसिकता बनानी होगी।

२. राजनैतिक इच्छा शक्ति बन जाने के बाद भी राजनीतिक एवं अभिजात्य वर्ग जन साधारण की शिक्षा को अपने लिये हितकर नहीं मानते। अतः ऊपरी तौर पर उसकी बात करते हुए भी मन से उसकी सफलता के लिये वांछित काम नहीं कर पा रहे हैं।

३. १९८६ की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में गैर-सरकारी संस्थाओं को शिक्षा कार्यों में प्राथमिकता के आधार पर जोड़ने और उनके माध्यम से कार्य करने की बात कही गई है। देश में सैंकड़ों ऐसी संस्थाएं हैं जिनका सहयोग अपेक्षित है। परन्तु अभी भी इन संस्थाओं का अपेक्षित सहयोग प्राप्त नहीं किया जा रहा है। कुछ इनी गिनी संस्थाओं को सुविधानुसार इस कार्यक्रम के साथ जोड़ा जाता है जो अनुचित है। बिना भेदभाव के गैर सरकारी संस्थाओं को इस कार्य के साथ जोड़ा जाना चाहिये।

४. जन-साधारण किसी भी योजना के साथ उस समय तक पूरी तरह अपने आपको जोड़ नहीं पाता जब तक उसे सरकारी कार्यक्रम मानकर चलता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से लागू सभी पंचवर्षीय योजनाओं में जन-साधारण से सम्बन्धित योजनाओं में जनता की सक्रिय भागीदारी का अभाव इसीलिये रहा कि वह सरकारी कार्यक्रम माना गया। जनता समझती रही कि यह तो सरकार का कार्य है, हमें क्या लेना देना है हमारा काम तो सिर्फ वोट देना है उसके बाद की सारी जिम्मेदारियां सरकार की होती हैं

अतः उन्हें नागरिकों के अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान कराना आवश्यक है। इसलिये प्रत्येक कार्य में जनता की भागीदारी सुनिश्चित करना जरूरी है।

आज भी शिक्षा प्रसार कार्य को आम व्यक्ति अभिजात वर्ग द्वारा उनके शोषण के लिये या उन पर दया के आधार पर किया गया कार्य मानते हैं।

इन सब बिन्दुओं पर व्यापक चिन्तन कर नई शिक्षा नीति के आधार पर व्यवहारिक दृष्टि से योजनाओं का क्रियान्वयन द्वारा ही इस सदी के अन्त तक सबको शिक्षा के लक्ष्य की प्राप्ति की जा सकेगी।

जनतंत्र और संपूर्ण साक्षरता अभियान

सारे देश के राज्यों का साक्षरता की दृष्टि से अध्ययन किया जाये तो हमें पता चलता है कि अन्य राज्यों की तुलना में हिन्दी भाषी राज्य सबसे पिछड़े हुए हैं। राष्ट्रीय विकास में शिक्षा के महत्व को किसी भी स्थिति में भुलाया नहीं जा सकता। भारत वर्ष विश्व का सबसे बड़ा जनतंत्रीय देश है। समाज का प्रत्येक नागरिक यदि पढ़ा लिखा नहीं है तो भला वह स्वतन्त्र देश में नागरिकों के कर्तव्यों और अधिकारों का निर्वाह कैसे कर सकेगा ? अपनी सामाजिक जिम्मेदारियों का आज के परिप्रेक्ष्य में वहन कैसे कर सकेगा और अपनी स्थिति को कैसे सुधार सकेगा ? साक्षरता व्यक्ति की प्रतिभा, क्षमता और व्यक्तित्व के विकास की धुरी है। साक्षरता के बिना मनुष्य के सोचने, समझने और बरतने की शक्ति का कभी भी विकास नहीं हो सकता। इसके अभाव में वह संकुचित दायरे में ही रहता है और दृष्टिकोण के विकास में कई दकियानूसी समस्याओं में उलझ कर विकास के मार्ग को अवरूद्ध कर देता है। निरक्षरता मनुष्य को दूसरे के विचारों और निर्देशों पर चलने को मजबूर करती है और इस तरह वह स्वतंत्र नागरिक के अपने मूलभूत अधिकारों से वंचित कर दिया जाता है। निरक्षरता के कारण उसे अच्छे और बुरे में निर्णय करने की क्षमता नहीं रहती है और कई बार अनुचित निर्णय ले लेता है। इससे न केवल स्वयं का परन्तु समाज और राष्ट्र का भारी नुकसान कर बैठता है। अतः साक्षरता को आज के युग में प्रत्येक नागरिक के लिये अनिवार्य आवश्यकताओं में प्राथमिकता के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिये।

यूनेस्को के अध्ययन के अनुसार यदि भारत में साक्षरता प्रसार कार्य को प्राथमिकता के आधार पर पूरे जोश के साथ लागू नहीं किया गया तो

इस सदी के अन्त तक विश्व में जितने निरक्षर व्यक्ति होंगे उनमें से आधे से ज्यादा भारत वर्ष में होंगे। जरा सोचें यदि यह स्थिति बन जाती है तो विश्व के अन्य देशों की तुलना में हम कहां होंगे ? विश्व के छोटे-छोटे देशों की तुलना में भी हम औद्योगिक और अन्य विकास कार्यों में बहुत पिछड़ जाएंगे। यही नहीं विश्व समुदाय में हमारा कोई स्थान नहीं होगा। हमारी बात कोई नहीं सुनेगा और हमें छोटी-छोटी बातों के लिये भी दूसरे के ऊपर अवलम्बित रहना पड़ेगा।

भारतवर्ष का विश्व समुदाय में हमेशा से अपना महत्वपूर्ण स्थान रहा है। वह हमेशा ही विश्व का गुरू कहलाता रहा है। उसने विश्व को हमेशा दिशा-निर्देश दिया है। उसकी बातों एवं सुझावों को काफी महत्व दिया जाता रहा। उसने सारे संसार में अपनी सांस्कृतिक धरोहर-सभ्यता तथा मानवीय गुणों के कारण शान्ति, भाईचारा और एक दूसरे के प्रति सद्भावना और समन्वय बनाये रखा है। अनेकता में एकता हमारी संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग है। परन्तु आज स्थिति धीरे धीरे विपरीत होती जा रही है। अपार जनसंख्या के बढ़ते और निरक्षरता के रहते हम निरन्तर पिछड़ते चले जा रहे हैं।

महिला एवं बाल शिक्षा की स्थिति तो और भी विषम है। इससे समाज में महिलाओं और बच्चों का न केवल शोषण ही बढ़ रहा है वरन् समाज में कई सामाजिक बुराइयां भी बढ़ रही हैं। अतः साक्षरता प्रसार के कार्य को प्राथमिकता के आधार पर बढ़ाना ही होगा। वरन् ऐसी स्थिति बन जायेगी कि हम कहीं के नहीं रहेंगे। भारत सरकार ने इन सारी परिस्थितिय्रों को ध्यान में रखते हुए सन् १९७८ में राजनैतिक इच्छा-शक्ति बनाई और राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम सारे देश में पहली बार प्राथमिकता के तौर पर प्रारंभ किया गया। इसके लिए बजट में २०० करोड़ का प्रावधान

भी रखा गया। ऐसा नहीं है कि इसके पूर्व साक्षरता कार्यक्रम देश में नहीं चला। अलग-अलग राज्यों में सार्वजनिक शिक्षण संस्थाओं, विश्वविद्यालयों, सरकार तथा अन्य एजेन्सियों द्वारा यह कार्य किया जाता रहा है। परन्तु राष्ट्रव्यापी नीति निर्धारण कर सारे देश में एकरूपता एंव प्राथमिकता के आधार पर पहली बार १९७८ में यह कार्य प्रारंभ करने का संकल्प किया गया जो सही दिशा में लिया गया सही कदम था। परन्तु यह कार्यक्रम जितना गतिशील बनना चाहिये था नहीं बन सका। अतः मई १९८८ में भारत सरकार द्वारा अपनी १९८६ की नई नीति के आधार पर राष्ट्रीय साक्षरता मिशन की स्थापना कर इस कार्यक्रम को सारे देश में जोर शोर से लागू किया। इससे सारे देश में इस समस्या के प्रति लोगों में जागरूकता बढ़ी है। लोगों ने शिक्षा और विशेषकर साक्षरता की आवश्यकता को महसूस किया है और इस कार्यक्रम में सहयोग देना भी प्रारंभ हुआ है। परन्तु यह अभी भी प्रारंभिक अवस्था में है। अभी बहुत कुछ किया जाना है।

राष्ट्रीय साक्षरता मिशन की विशेषता केवल पुरूषों की साक्षरता को बढ़ावा देना मात्र नहीं है वरन् महिलाओं और बच्चों की शिक्षा को साथ-साथ आगे बढ़ाने का कार्यक्रम भी इससे जुड़ा हुआ है। भारत में बच्चों की शिक्षा की समस्या भी उतनी ही भयावह है जितनी कि साक्षरता। अतः हमारी भावी पीढ़ी साक्षर हो इसके लिये आवश्यक है कि बच्चों की शिक्षा का भी सार्वजनिकरण हो। हमारी समस्या यह है कि ९५ प्रतिशत बच्चे स्कूलों में प्रवेश तो लेते हैं परन्तु धीरे धीरे ६० प्रतिशत से ज्यादा बच्चे स्कूल छोड़ देते हैं। इससे न केवल ये बच्चे प्राथमिक शिक्षा से वंचित रह जाते हैं बल्कि देश में निरक्षरता का प्रतिशत भी बढ़ाते रहते हैं। अतः साक्षरता कार्यक्रम के साथ साथ बच्चों की शिक्षा को भी महत्व दिया जा

रहा है। यह कार्य अनौपचारिक शिक्षा के माध्यम से भी किया जा रहा है।

साक्षरता प्रसार के इस कार्य में देश में केरल ने एक उदाहरण प्रस्तुत किया है। देश में सर्व प्रथम केरल राज्य का अर्नाकुलम जिला सम्पूर्ण साक्षर घोषित हुआ। इससे सारे देश में एक नई शुरूआत हुई और इस प्रकार की प्रेरणा एवं संदेश सम्पूर्ण राष्ट्र में पहुंचा। देश का केरल राज्य पहले सम्पूर्ण साक्षर होने वाला राज्य बना और यह कार्य धीरे-धीरे देश के सभी जिलों में पहुंच रहा है।

सम्पूर्ण साक्षरता अभियान इस समय देश के २७५ जिलों में चलाया जा रहा है। आशा है कि आठवीं पंचवर्षीय योजना के अन्त तक देश के ३४५ जिलों में यह अभियान पहुंच जायेगा। मार्च १९९४ तक इस अभियान के माध्यम से देश् में ३.९१ करोड़ निरक्षरों को साक्षर बनाया जा चुका है। और आठवीं पंचवर्षीय योजना के अन्त तक १० करोड़ निरक्षरों को साक्षर बनाना है।

राजस्थान में संपूर्ण साक्षरता अभियान

राजस्थान भी इस कार्य में पीछे नहीं है। देश के हिन्दी भाषी क्षेत्र में सर्व प्रथम साक्षरता अभियान का प्रारंभ राजस्थान के अजमेर जिले से हुआ। इस अभियान के द्वारा अजमेर जिले के ३.४२ लाख निरक्षरों को साक्षर बनाया गया जो जिले का ८९.८१ प्रतिशत लक्ष्य रहा। और इस प्रकार अजमेर १९९२ में उत्तरी भारत का प्रथम सम्पूर्ण साक्षर जिला बन गया। १९९३ से वहां उत्तर साक्षरता का कार्यक्रम चल रहा है। इसी प्रकार आदिवासी क्षेत्र का डूंगरपुर जिला भी इस अभियान के तहत सम्पूर्ण साक्षर घोषित हो चुका है। वहां साक्षरता का प्रतिशत ६५.१७ रहा है यह जिला देश का प्रथम आदिवासी साक्षर जिला बन गया है। राजस्थान में सम्पूर्ण साक्षरता अभियान की अजमेर और डूंगरपुर जिलों की सफलता और जन

साधारण में इसके प्रति उत्साह एवं वातावरण को देखते हुए यह कार्य राज्य के अन्य कई जिलों में प्रारंभ कर दिया गया है। भरतपुर, सीकर, पाली जिलों में यह कार्य पूरा होने पर है जब कि टोंक, बारा, अलवर, उदयपुर और राजसमन्द जिलों में सम्पूर्ण साक्षरता अभियान के अधीन ये परियोजनाएं प्रारंभ हो चुकी हैं। इन जिलों में वातावरण निर्माण का कार्य पूरा हो चुका है तथा साक्षरता कार्य भी प्रारंभ हो गये हैं। ऐसी आशा है कि अगले वर्ष तक सारे राज्य में सम्पूर्ण साक्षरता अभियान कार्य प्रारंभ हो जायेगा। ऐसा लगता है कि उत्तरी भारत में राजस्थान को प्रथम सम्पूर्ण साक्षर राज्य बनने का सौभाग्य प्राप्त हो सकेगा। इसके लिए जनता, सरकार, सार्वजनिक शिक्षण संस्थाओं तथा अन्य संगठनों में आपसी सहयोग एवं समन्वय की आवश्यकता है।

अभियान एक जन आन्दोलन

१९८६ की राष्ट्रीय शिक्षा नीति और उसके आधार पर स्थापित राष्ट्रीय साक्षरता मिशन की अवधारणा में साक्षरता कार्यक्रमों में स्वैच्छिक संस्थाओं और संगठनों की उचित भागीदारी को सुनिश्चित किया गया है। सम्पूर्ण साक्षरता अभियान एक जन-आन्दोलन है — मिशन है। राष्ट्रीय अस्मिता एवं चैतन्य को आगे बढ़ाने का कार्यक्रम है। इसमें जन-साधारण की समझ, निष्ठा और भागीदारी यदि सुनिश्चित नहीं होगी तो यह कार्यक्रम कभी भी सफल नहीं होगा। राष्ट्रीय साक्षरता मिशन द्वारा प्रस्तुत आंकड़े भले ही आकर्षित लगते हों और सरकारी फाइलों और कागज़ों में सम्पूर्ण साक्षरता का लक्ष्य प्राप्त कर लिया जाये परन्तु वास्तविकता कुछ और ही होगी। १९७८ के बाद से प्रौढ़ शिक्षा और विशेषकर साक्षरता के कार्य के लिये राष्ट्रव्यापी राजनैतिक इच्छा शक्ति बनी है, उसके क्रियान्वयन के लिये संकल्प भी बना है परन्तु अभी भी उचित कार्य योजना का अभाव है। जन

साधारण, पुरानी राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाओं, ग्रामीण संगठनों और अनेक ग्रामीण क्षेत्रों मे कार्यरत कानूनी, सामाजिक और अन्य संगठनों का वांछित सहयोग इस कार्य के लिये अभी पूरी तरह प्राप्त नहीं किया जा सका है। ऐसा लगता है कि अभियान को भी सरकारी कार्यक्रम मानकर कुछ इने गिने लोगों के भरोसे चलाया जा रहा है। ऐसे लोग और संगठन जिनका शिक्षा कार्यों से कभी कोई सम्बन्ध नहीं रहा, सक्रिय रूप से इसमें लगा दिये जा रहे हैं। कुछ लोग एवं संगठन केवल आर्थिक लाभ के लिये इस कार्यक्रम से जुड़ते चले जा रहे हैं। या जिन लोगों का कार्यक्रम के प्रभारी तक पहुंच है उन्हें ही इस कार्यक्रम से जोड़ा जा रहा है। समाज में बहुत से ऐसे व्यक्ति और संगठन उपलब्ध हो सकते हैं जो इस प्रकार के कार्यक्रमों में सहयोग दे सकें, उन्हें सम्पर्क कर उनका भी सहयोग प्राप्त किया जाना चाहिये। हमारे समाज में आज जो स्थिति बन रही है उसमें बहुत से अच्छे योग्य एवं प्रभावशाली लोग अनावश्यक झमेलों में पड़ने या किसी के पीछे पड़कर कार्य प्राप्त करने में रूचि नहीं रखते हों परन्तु हमें उन्हें सम्मानपूर्वक इस प्रकार के कार्यों के साथ निश्चित रूप से जोड़ना चाहिये। आज राष्ट्र व्यापी चेतना सम्पूर्ण साक्षरता अभियान के प्रति बन रही है, उसका लाभ उठाते हुए हमें समाज के इस पवित्र शिक्षा-यज्ञ में यथा शक्ति सहयोग देकर राष्ट्रीय कर्तव्य को निभाना चाहिए

निरक्षरता से मुक्ति का उपाय : सभी स्तरों पर समन्वय

उत्तरी भारत के राज्यों में तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो साक्षरता का प्रतिशत अन्य राज्यों की तुलना में बहुत कम है। महिला शिक्षा तो नहीं के बराबर है। यह ऐसी स्थिति है जो आज के इस वैज्ञानिक एवं जनतंत्रीय युग में राष्ट्र के विकास के लिए हानिकारक है। भारतीय समाज जो खानपान, रहन-सहन, रीति-रिवाज, बोल-चाल, भाषा आदि की दृष्टि से भिन्न है — उसके लिए तो साक्षरता और भी आवश्यक है। भिन्नता में एकता की कड़ी शिक्षा ही है। भावनात्मक एकता के लिए साक्षरता अनिवार्य है।

प्राचीन काल में प्रौढ़-शिक्षा जो समाज शिक्षा के रूप में प्रचलित थी — उसका स्वरूप पूर्णरूपेण अनौपचारिक एवं स्थान और क्षेत्र विशेष तक सीमित था। उसका माध्यम ग्रामीण, क्षेत्रीय एवं प्रांतीय स्तर पर ब्राहाणों, संतों, फकीरों, सूफियों, श्रृषियों आदि के द्वारा कथा कीर्तन, भ्रमण, तीर्थाटन, आपसी मेलजोल, जमातों, नौटंकियों, नाटकों, मेलों त्यौहारों के द्वारा श्रृव्य एवं दृश्य साधनों के द्वारा होता था। परिब्राजक शिक्षकों पर्व संस्थाओं द्वारा ये प्रवृतियां संचालित होती थीं। इनमें जमातों, देशाटन, तीर्थ-यात्राओं, मेलों, हाट-बाजारों का अधिक प्रभाव था। इन प्रवृतियों में आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक बातों का पुट था जिससे कि इन कार्यक्षेत्रों को सामान्य जन स्वीकार कर सकें।

इन कार्यक्षेत्रों का आधार सामुदायिक था और ये ग्रामीण धंधों के साथ जुड़े हुए थे। ग्रामीण स्तर पर अनौपचारिक शिक्षा के द्वारा कृषि एवं उससे सम्बन्धित सभी व्यवसायों की शिक्षा दी जाती थी। यही कारण था कि उस समय समाज शिक्षा के आयामों में चेतना तथा कार्यकारिता पर ज्यादा बल दिया जाता था। साक्षरता पर इतना ध्यान नहीं दिया जाता था।

आधुनिक युग में वैज्ञानिक विकास, आवश्यकताओं के बढ़ने और उनकी विविधता, नागरिकों के कार्य-क्षेत्र के व्यापक होने, जनसंख्या के बढ़ने और कार्य का क्षेत्र कृषि से हटाकर उद्योगों, नौकरियों आदि तक बढ़ जाने में साक्षरता का महत्व बहुत बढ़ गया है। आज कोई भी एकाकी नहीं रह सकता और यही बात नागरिकों के लिए भी है। व्यक्ति, समाज एवं विश्व एक दूसरे पर अबलंबित हो गये हैं। विश्व में कहीं भी घटने वाली प्रत्येक घटना का प्रभाव प्रत्येक राष्ट्र एवं व्यक्ति पर परोक्ष या अपरोक्ष रूप से पड़ता ही है। आज व्यक्ति के जीवनयापन का क्षेत्र भी सीमित नहीं है। जीवन स्तर के बढ़ने के साथ-साथ आवश्यकताएं भी बढ़ गई हैं। अतः यह आवश्यक हो गया है कि नागरिक ज्यादा से ज्यादा ज्ञान प्राप्त करें और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नये-नये काम धंधों को प्रारम्भ करें।

आजादी के बाद देश में केन्द्रीय, प्रांतीय सरकारें स्थापित हुई तथा क्षेत्रीय पंचायती राज संस्थाओं का प्रारम्भ हुआ। संविधान की रचना हुई। नियम कानून बने। आज का नागरिक किसी गांव का नागरिक न होकर भारत का नागरिक है। वह भारतीय संविधान, केन्द्रीय एवं प्रांतीय सरकारों के कानून तथा नियमों से शासित है। सरकार द्वारा नागरिकों के लिए चलायी जा रही विभिन्न योजनाओं-परियोजनाओं की जानकारी उसके लिए आवश्यक है। विभिन्न राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक कानून बने हैं — जिन्हें जानना उसके लिए आवश्यक है। नागरिक अधिकारों का उसे सही ढंग से प्रयोग करना है। अतः यह आवश्यक है कि प्रत्येक नागरिक पढ़ा-लिखा हो ताकि वह इन सब बातों को जान सके, और अपने अधिकारों एवं कर्तव्य का सही ढंग से निर्वाह कर सके। साथ ही अपने आर्थिक विकास के लिए नये-नये कार्य प्रारम्भ कर सके। यही कारण है कि आज शिक्षा का महत्व बढ़ गया है। ग्रामीण समुदाय के अनपढ़ व्यक्तियों के

लिए साक्षरता इस दृष्टि से बहुत ही आवश्यक है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश के विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाओं का प्रारम्भ किया गया। इन योजनाओं में अन्य बातों के साथ-साथ प्रौढ़ सामज शिक्षा पर भी बहुत जोर दिया गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत भारत सरकार प्रौढ़ शिक्षा द्वारा एवं समाज शिक्षा के लिए Intensive Rural Education Scheme के अन्तर्गत देश भर में कई जनता-कालेज कम्युनिटी सेंटर्स, समन्वित पुस्तकालय सेवा, रूरल इन्स्टीटयूट आदि प्रारम्भ किये गये। इन संस्थाओं के माध्यम से ग्रामीण नवयुवकों को विभिन्न उद्योगों का प्रशिक्षण, समाज-शिक्षा की विभिन्न सामाजिक प्रवृतियों का संचालन, ग्रामीण नेतृत्व कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण, सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन एवं विकास और साक्षरता कार्यक्रमों का प्रारम्भ हुआ। परन्तु दुर्भाग्यं यह रहा कि विकास के इस युग में भौतिक विकास संबंधी कार्यक्रमों को अधिक महत्व दिया जाने लगा और प्रौढ़ एंव समाज शिक्षा के कार्यक्रम अपना महत्व स्थापित नहीं कर पाये। इसमें कार्यरत कार्यकर्ता एवं कर्मचारी वांछित सफलता प्राप्त नहीं कर सके। सरकार ने इस कार्यक्रम की तुलना में कृषि, उद्योग तथा अन्य कार्यक्रमों पर अधिक ध्यान दिया। फलतः इन संस्थाओं का भविष्य समाप्त हो गया। ये संस्थाएं या तो धीरे-धीरे बंद कर दी गयीं या उनका स्वरूप ही बदल दिया गया और वे औपचारिक संस्थाओं के रूप में बदल गयीं। धीरे-धीरे विकास कार्यक्रमों में समाज-शिक्षा का कार्यक्रम बंद कर दिया गया। प्रौढ़-शिक्षा कार्यक्रमों को इससे बड़ा धक्का लगा। वैसे सरकार तथा स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा यह कार्य थोड़ा बहुत चलता रहा। परन्तु राष्ट्रव्यापी कोई कार्यक्रम देश में एक साथ नहीं चल सका। उसे प्राथमिकता के आधार का राष्ट्रीय कार्यक्रम नहीं बनाया जा सका।

नागरिक समाज का निर्माता, जनतंत्र का प्रहरी तथा राष्ट्रीय विकास की महत्वपूर्ण कड़ी है। वह राष्ट्रीय भावनात्मक एकता का केन्द्र बिन्दु है। वह राष्ट्रीय एकता, अखंडता और सांस्कृतिक विरासत का प्रतीक है। उसे मानवीय मूल्यों को आधार मान कर आज के परिवेश में आदर्श नागरिक बनना है। उसे राष्ट्र की मुख्य धारा में समान रूप में सहयोगी बनना है। इसके लिए प्रौढ़-शिक्षा एवं समाज शिक्षा बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है।

१९५९ में देश में सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के स्थान पर जनतंत्रीय विकेन्द्रीकरण योजना के अन्तर्गत पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना हुई। इसके द्वारा गांवों में तीन स्तरीय प्रशासन व्यवस्था लागू की गई। पंचायतों, पंचायत-समितियों तथा जिला परिषदों का गठन किया गया। इन संस्थाओं मे निर्वाचित व्यक्तियों द्वारा विकास संबंधी सभी कार्य अपने हाथ में लिए गये। इन संस्थाओं में बड़ी अपेक्षाएं थीं परन्तु ये भी प्रौढ़-शिक्षा के लिये कुछ नहीं कर सकीं।

प्रौढ़-शिक्षा कार्यक्रम के प्रति स्वतंत्रता प्राप्ति से ही राजनैतिक संकल्प, सरकारी प्रतिबद्धता तथा उपयुक्त कार्यकारी योजना का अभाव रहा है। ऐसा लगता है कि राजनीतिज्ञ और अधिकारी मन, वचन एवं कर्म से नहीं चाहते कि देश की निरक्षर जनता पूर्ण रूप से साक्षर हो। यही कारण है कि आधे मन से ये कार्यक्रम बनाये और चलाये जाते रहे हैं। शिक्षा विषय वैसे भी राजकीय विषय रहा है। राज्य सरकारों शिक्षा के विकास कार्यक्रमों को अपेक्षाकृत कम महत्व का मानती रही है। उसमें प्रौढ़-शिक्षा का स्थान तो नगण्य सा रहा है।

प्रथम बार १९७७ में प्रौढ़-शिक्षा को राष्ट्रीय कार्यक्रम घोषित किया गया और राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम सारे देश में लागू किया गया। परन्तु

'Trickling down concept' और 'Path work theory' के कारण उसे सारे देश में कार्य के रूप में प्रारम्भ नहीं किया गया। इस सिद्धांत के अन्तर्गत कुछ चुने हुए स्थानों पर कुछ समय के लिए सरकारी सहायता से ये कार्यक्रम प्रारम्भ किये गये, कुछ समय बाद ये कार्यक्रम कम होते रहे और श्रम शक्ति और समय का अपव्यय ही हुआ।

राजनैतिक दृष्टिकोण, अर्थ का अभाव, अच्छी संस्थाओं और कार्यकर्ताओं की कमी, समय पर योजनाओं की स्वीकृति का अभाव, सरकारी तंत्र की उदासीनता और कार्यक्रम की निंतरता नहीं बनी रहने से यह कार्यक्रम भी पहले की ही तरह असफल हो गया। सरकारों के बदलने के साथ ही इस कार्यक्रम का महत्व राजनैतिक आधार पर घटता और बढ़ता रहा है।

विश्व के छोटे-बड़े अन्य देशों की भांति प्रौढ़-शिक्षा कार्यक्रम को भारत में उचित प्राथमिकता कभी नहीं दी गई। एशिया के कई छोटे-बड़े देश जो हमारे साथ या हमारे बाद स्वतंत्र हुए उनके यहां साक्षरता का प्रतिशत हमारी तुलना में बहुत ज्यादा है। इन देशों में इस कार्यक्रम को राष्ट्रीय महत्व का मानकर निश्चित अवधि में उसे पूरा करने का प्रयास किया गया।

जनसाधारण में भी शिक्षा के प्रति जागरुकता का पूर्णरूप से अभाव रहा है। वह इस कार्यक्रम को सरकारी कार्यक्रम मानती रही है। जनता ने कभी नहीं माना कि शिक्षा उसके लिये उपयोगी है। इसे जन आंदोलन के रूप में कभी भी स्वीकार नहीं किया गया। शिक्षा कुछ ही व्यक्तियों का अधिकार है, यह सिद्धांत आज भी हम मानकर चलते हैं। यद्यपि सरकार ने शिक्षा प्रसार के बहुत प्रयत्न किये परन्तु शिक्षा के सरकारी आंकड़ों से पता चलता है कि शिक्षा प्रत्येक नागरिक के लिये अनिवार्य है — ऐसा

हमने कभी नहीं स्वीकारा। यही कारण है कि ४२ वर्षों बाद भी हम प्राथमिक शिक्षा का सार्वजनीकरण नहीं कर पाये और साक्षरता का प्रतिशत ३६% तक ही बढ़ा सके।

नई शिक्षा नीति में प्रौढ़-शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा तथा महिला शिक्षा को उचित स्थान दिया गया है। प्रौढ़ एवं सतत् शिक्षा के लिये कई कार्यक्रमों का प्रावधान है। इसे जन आंदोलन के रूप में और क्षेत्रीय आधार पर पूर्ण साक्षरता कार्यक्रम के रूप में लागू करने की बात है। परन्तु इसकी क्रियान्वित कैसे होगी ? क्या इसका भी वही भविष्य नहीं होगा, जो पहले हुआ है ? — यह देखना है।

यदि प्रत्येक पढ़ा-लिखा नागरिक, सभी सरकारी कर्मचारी, सभी संस्थाएं एवं सरकारी निगम और आम जनता इसके प्रति प्रतिबद्ध हो जाएं और एक साथ जुट कर कार्य करें तो कोई कारण नहीं कि हम निरक्षरता के इस अभिशाप को शीघ्र ही नहीं मिटा सकें। प्रश्न हम सभी के एक जुट होकर कार्य करने का है। इस कार्य को समाज-श्रृण के रूप में लेकर अपने स्तर पर उसे पूरा करने का है। साथ ही सरकार के द्वारा योजनाओं की समय पर स्वीकृति, आर्थिक सहायता प्रदान करना, स्थानीय स्वैच्छिक संस्थाओं का योगदान, समय पर पाठ्य-पुस्तकें एवं साहित्य-सृजन करना एवं उसे उपलब्ध करवाना, अन्य आवश्यक साधन सुविधाओं का प्रबंध करवाना और जनता का सहयोग इस कार्यक्रम की सफलता के लिए बहुत ही आवश्यक है।

समूचे भारत के सभी राज्यों की समस्याएं एक समान हैं — हम सब बैठकर इन पर विचार करें और उनके निराकरण के उपाय खोजें। मुझे आशा है कि हम ऐसा कर सकेंगे और प्रौढ़-शिक्षा के कार्यक्रम को सफल बनाने में अपना यथोचित सहयोग दे सकेंगे।

राष्ट्रीय साक्षरता अभियान – प्रगति एवं जन-सहभागिता

संपूर्ण साक्षरता अभियान की वर्तमान स्थिति

सन् १९८६ की नई शिक्षा नीति राष्ट्रीय आवश्यकताओं और अपेक्षाओं के अनुरूप एक सही कदम है। इस शिक्षा नीति के आधार पर देश में शिक्षा को कुछ प्राथमिकता प्राप्त हुई। पहली बार राष्ट्र में शिक्षा के लिये राजनैतिक इच्छा शक्ति और संकल्प बना। केन्द्रीय सरकार ने सर्म्पूण साक्षरता और सबके लिए शिक्षा का राष्ट्र-व्यापी कार्यक्रम देश भर में लागू करने की योजना बनाई। इसके लिये १९८८ में राष्ट्रीय साक्षरता मिशन की स्थापना की गई। इस मिशन के द्वारा राष्ट्र-व्यापी साक्षरता कार्यक्रम इस समय देश के ३९० जिलों में चलाया जा रहा है। आशा है कि इस सदी के अन्त तक देश के सभी जिले इसके कार्य-क्षेत्र के अन्तर्गत ले लिये जायेंगे।

सबके लिए शिक्षा प्राप्ति का लक्ष्य इस सदी के अन्त तक प्राप्त करना है। अतः सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा देने हेतु अनेक योजनाएं चलाई जा रही हैं। विशेषकर महिलाओं और बच्चियों की शिक्षा पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों में पिछड़े और परिगणित लोगों के लिये लोक जुम्बिश, शिक्षाकर्मी योजना, अनौपचारिक शिक्षा, सतत् शिक्षा, दूरस्थ शिक्षा योजना आदि अनेक कार्यक्रम लागू किये गये हैं।

केन्द्रीय सरकार इस सदी के अन्त तक सबके लिए शिक्षा और सम्पूर्ण साक्षरता के लक्ष्य की पूर्ति के लिये राज्य सरकारों को वित्तीय, तकनीकी और सभी प्रकार की सुविधाएं प्रदान कर रही है। इसके लिये राष्ट्रीय, प्रान्तीय और जिला स्तरों पर शिक्षा समितियों का गठन किया गया है और किया जा रहा है। स्वयंसेवी संस्थाओं का इन कार्यक्रमों में हर प्रकार से

सहयोग प्राप्त किया जा रहा है। ब्लाक और ग्राम्य स्तरों पर भी समितियों का गठन कर अधिक से अधिक लोगों को इन कार्यक्रमों से जोड़ा जा रहा है। इस प्रकार शिक्षा के कार्य को जनक्रान्ति के रूप में आगे बढ़ाये जाने के सभी प्रयत्न किये जा रहे हैं।

साक्षरता की प्रगति

शिक्षा के इस सारे परिदृश्य में जो बात इस समय हमारे लिये चिन्ता का विषय है वो है – हिन्दी भाषी क्षेत्र में साक्षरता के प्रतिशत का कम होना। राष्ट्रीय साक्षरता के ५२.११ प्रतिशत की तुलना में हिन्दी भाषी राज्यों में प्रतिशत बहुत कम है। राजस्थान में साक्षरता ३८.५५ प्रतिशत के करीब है। महिलाओं और पिछड़े वर्गों में साक्षरता का प्रतिशत बहुत कम है। यद्यपि राज्य सरकार इस समय शिक्षा के कार्य को प्राथमिकता के आधार पर आगे बढ़ा रही है। वर्तमान में राज्य के २२ जिले सम्पूर्ण साक्षरता कार्यक्रम के अन्तर्गत कार्यरत हैं। राजस्थान में सार्वजनिक शिक्षण संस्थाएं बहुत हैं जो राष्ट्रीय आन्दोलन के समय से ही शिक्षा एवं सामाजिक उत्थान के कार्यक्रमों में लगी हुई हैं। इस समय भी वे शिक्षा के इस पुनीत कार्य में अपना पूर्ण सहयोग दे रही हैं। कई नई संस्थाएं भी प्रारंभ हुई हैं। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि हम सही रास्ते पर चल रहे हैं। परन्तु अभी बहुत कुछ करना है।

अभियान में बाधाएं

शिक्षा के लक्ष्य की पूर्ति में अभी भी बहुत सी बाधाएं हैं जिन्हें दूर करना होगा। उसके बिना शिक्षा और साक्षरता का यह आन्दोलन जन-आन्दोलन नहीं बन सकेगा – खाना पूर्ति तो हो जाएगी परन्तु वास्तविक सफलता प्राप्त नहीं हो सकेगी।

मेरी दृष्टि से इन बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है :

(१) अभी भी जन-साधारण शिक्षा को अपने लिये आवश्यक नहीं मानता उसके लिये इसका महत्व अभी भी नगण्य है। उसमें जागरूकता का अभाव है — जिसे बढ़ाना होगा। चेतना के साथ-साथ शिक्षा के लिये मानसिकता भी बनानी होगी।

(२) राजनैतिक इच्छा शक्ति बन जाने के बाद भी अभिजात्य वर्ग जन-साधारण की शिक्षा को अपने लिये हितकर नहीं मानते। अतः ऊपरी तौर पर उसकी बात करते हुए भी मन से उसकी सफलता के लिये वांछित काम नहीं कर पा रहे हैं। उनकी मानसिकता भी बदलनी होगी।

(३) १९९६ की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में गैर-सरकारी संस्थाओं को शिक्षा कार्यों में प्राथमिकता के आधार पर जोड़ने और उनके माध्यम से कार्य कराने की बात कही गई है। देश में सैकड़ों ऐसी संस्थाएं हैं जिनका सहयोग अपेक्षित है। परन्तु अभी भी सरकार द्वारा इन संस्थाओं का अपेक्षित सहयोग नहीं लिया जा रहा है। कुछ इनी गिनी संस्थाओं को सुविधानुसार इस कार्यक्रम के साथ जोड़ा जाता है जो अनुचित है। बिना भेद-भाव के गैर-सरकारी संस्थाओं को इस कार्य के साथ जोड़ा जाना चाहिये।

(४) जन-साधारण किसी भी योजना के साथ उस समय तक पूरी तरह अपने आपको जोड़ नहीं पाता जब तक कि वह उसे सरकारी कार्यक्रम मानकर चलता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से लागू सभी पंचवर्षीय योजनाओं में, जनसाधारण से संबंधित योजनाओं में जनता की सक्रिय भागीदारी का अभाव इसीलिये रहा है कि वह एक सरकारी कार्यक्रम माना गया। जनता समझती रही कि यह तो सरकार का कार्य है, हमें क्या लेना देना है, हमारा काम तो सिर्फ वोट देना है उसके बाद की सारी जिम्मेदारियाँ सरकार की होती हैं, अतः नागरिकों के अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान उन्हें कराना आवश्यक है। इसलिये प्रत्येक कार्य में जनता की भागीदारी

सुनिश्चित करनी होगी।

आज भी शिक्षा प्रसार कार्य को आम व्यक्ति अभिजात वर्ग द्वारा उनके शोषण के लिये या उन पर दया के आधार पर किया गया कार्य मानते हैं। जुलियस नरेरे का शिक्षा का दृष्टिकोण इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। जनसाधारण की आवश्यकताओं के आधार पर इसे राष्ट्रीय आयोजन का अंग मानकर चलना होगा।

समाज के प्रत्येक वर्ग के लिये अनिवार्य और महत्वपूर्ण अंग के रूप में प्रौढ़ शिक्षा - मार्च १९९६ विशेषकर महिलाओं, पिछड़े और परिगणित वर्ग की शिक्षा पर अधिक ध्यान देना होगा। समाज के आधे से अधिक इस वर्ग के लोगों को शिक्षा से वंचित रखना या उन्हें अच्छी शिक्षा नहीं देना जनतन्त्र और आदर्श समाज के विकास के लिये घातक है।

दार्शनिक प्लेटो के फीलोसोफर किंग्स के सिद्धान्त के स्थान पर गांधी के सर्वसाधारण की बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्त को अपनाकर कार्य करना है। शिक्षा के कार्यों में लगे सभी व्यक्तियों, संगठनों, सार्वजनिक शिक्षण संस्थाओं, विश्वविद्यालयों और सरकारी विभागों को इस कार्य के लिये सम्मिलित और समन्वय के आधार पर कार्य करने की आवश्यकता है।

शहरों, गांवों और कस्बों में समान अभ्यासक्रम, समान साधन-सुविधाओं और उचित प्रशिक्षित अध्यापकों के द्वारा समानता के आधार पर सभी को शिक्षा देनी होगी। शिक्षा कार्यों में भेदभाव से न केवल वर्ग संघर्ष बढ़ेगा वरन् देश के विकास में भी बाधाएं उत्पन्न होंगी।

देश भर में चलाये जा रहे सम्पूर्ण साक्षरता अभियान की सफलता के लिये जहाँ जन-साधारण की भागीदारी आवश्यक है, वहीं पिछले तीन-चार वर्षों के अनुभव और इस कार्यक्रम के क्रियान्वयन में आने वाली कठिनाइयों

को ध्यान में रखते हुए उसमें सुधार की आवश्यकता है। भारत सरकार के राष्ट्रीय साक्षरता मिशन द्वारा इस कार्यक्रम का समय-समय पर विभिन्न एजेन्सियों द्वारा मूल्यांकन करवाया है। राष्ट्रीय स्तर पर निष्णात व्यक्तियों द्वारा भी इस पर विचार कर आवश्यक सुझाव मांगे गये हैं। श्री राममूर्ति द्वारा दिये गये सुझाव इस कार्यक्रम की सफलता के लिए बहुत ही उपयोगी हैं।

अभियान की सफलता को नया रूप दिया जाना

सम्पूर्ण साक्षरता कार्यक्रम को अधिक गतिशील और सफल बनाने के लिय निम्न आधार पर नया रूप दिया गया!

(१) सम्पूर्ण साक्षरता कार्यक्रम के सफल संचालन हेतु इसे विकेन्द्रित किया जा रहा है। इस नयी व्यवस्था के अन्तर्गत साक्षरता परियोजना की स्वीकृति लेकर अभियान के क्रियान्वयन तक की संपूर्ण जिम्मेदारी राज्य स्तर पर गठित "राज्य साक्षरता मिशन प्राधिकरण" को सौंपी जाएगी। राज्य साक्षरता मिशन प्राधिकरण को वित्तीय अधिकार दिये जाएंगे ताकि उन्हें बार बार केन्द्र की अनुमति का इन्तजार नहीं करना पड़े।

देश भर के ३९० जिलों में सम्पूर्ण साक्षरता अभियान चलाया जा रहा है। इनमें २२ जिले राजस्थान के हैं। दिल्ली में बैठकर इतने व्यापक स्तर पर चलाये जा रहे कार्यक्रम पर निगरानी रखना संभव नहीं है। परियोजना की स्वीकृति, वित्तीय सहायता का समय पर स्वीकार करना, समयबद्ध मूल्यांकन, साधन-सुविधाओं को समय पर जुटाना आदि कार्य केन्द्रीय स्तर पर करने से अनावश्यक रूप में देरी होती है। अब इस कार्य को विकेन्द्रित करना आवश्यक है।

(२) सम्पूर्ण साक्षरता अभियान की सफलता का मापदण्ड वर्तमान में ६८ से ७० प्रतिशत तक साक्षरता लक्ष्य प्राप्त होने पर माना जाता है।

व्यवहारिक दृष्टि से यह संभव नहीं है। औपचारिक शिक्षा में भी यह लक्ष्य पूरा नहीं होता है तो साक्षरता कार्यकम में यह कैसे संभव है ? इसका परिणाम यह होता है कि झूठे आंकड़े देकर या ५० प्रतिशत लक्ष्य प्राप्त कर लेने पर भी जिले को सम्पूर्ण साक्षर घोषित कर वाह-वाही लूटी जाती रही है। अत: अब यह निश्चय किया गया है कि ५५ से ६० फीसदी लक्ष्य पूरे होने को ही सम्पूर्ण साक्षर जिला माना जा सकेगा। इससे कागजी खानापूर्ति में कमी आएगी।

(३) साक्षरता अभियान का पूर्ण मूल्यांकन राज्य के बाहर की संस्था करेगी इसके लिये राष्ट्रीय साक्षरता मिशन प्राधिकरण ने एक "कार्यदल" गठित किया है जिसने ऐसी संस्थाओं को सूचिबद्ध करने का कार्य पूरा कर लिया है!

(४) राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के मतानुसार ३५ वर्ष से ऊपर की आयु वर्ग के निरक्षरों को साक्षर करने में किया गया खर्च व्यर्थ साबित होता है। अत: १५-३५ आयु वर्ग के निरक्षरों को ही इस अभियान में सम्मिलित किया जाने का निर्णय किया गया है। जहां कोई अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र नहीं है वहां ९ से १४ आयुवर्ग के बालक-बालिकाओं को भी इस आयु वर्ग में सम्मिलित किया जा रहा है।

ये कुछ सुधार हैं जिससे आशा की जाती है कि साक्षरता अभियान की सफलता में सहायता मिलेगी।

जन-सहभागिता

साक्षरता अभियान की सफलता के लिये आधारभूत बात तो ग्रामीण स्तर से लेकर राज्य स्तर तक स्थानीय संगठनों, सार्वजनिक शिक्षण संस्थाओं और पंचायती राज घटकों की वास्तविक भागीदारी की है इसके लिये संयुक्त रूप से प्रयत्न कर इन संगठनों को इस कार्य के साथ जोड़ना होगा।

केवल मात्र खानापूर्ति करने या कुछ मन पसंद संस्थाओं से सहयोग प्राप्त करने मात्र से सफलता प्राप्त नहीं होगी। साक्षरता अभियान को जन-आन्दोलन बनाने के लिये जन-संगठनों के साथ जोड़ना ही होगा। जब तक इसे सरकारी कार्य की भांति चलाया जाएगा कभी भी वांछित सफलता प्राप्त नहीं होगी।

भारत वर्ष में प्राचीन काल में शिक्षा कार्य कभी राज्याश्रित नहीं रहा। यह कार्य हमेशा ही स्वायत्त रूप से ग्राम्य स्तर से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक विभिन्न शैक्षणिक संस्थाओं द्वारा किया जाता रहा है। इस कार्य में सरकार का हस्तक्षेप नगण्य होता था। शिक्षा कार्य ही नहीं अन्य सामाजिक कार्य भी विभिन्न संगठनों के माध्यम से होते थे। सरकार की योजनाओं को सामाजिक संगठनों द्वारा मान्यताएं प्राप्त होती रहती थी। इसी कारण वे सभी कार्य सर्व-साधारण को मान्य होते थे और उसमें उनकी सक्रिय भागीदारी रहती थी। इन कार्यों का उत्तरदायित्व ग्रामीण संगठनों, सामाजिक घटकों और पंचायतों पर था। इस प्रकार उनमें जनसमुदाय की सक्रिय भागीदारी रहती थी। वह आधार आज भी रहना चाहिये। सामाजिक संगठनों, स्वायत्त संस्थाओं और पंचायती राज संस्थाओं की भागीदारी इन कार्यों में सुनिश्चित की जानी चाहिये। शिक्षा कार्य विशेषकर साक्षरता अभियान को पंचायती राज संस्थाओं द्वारा जन साधारण के लिये अनिवार्य कार्य की तरह अपनाना होगा। यदि वह सभी कुछ किया जा सका तो निश्चित रूप से यह अभियान सफल होगा

अनौपचारिक शिक्षा और नयी शिक्षा नीति

शिक्षा का उद्देश्य केवल व्यक्ति की शिक्षा से नहीं, परन्तु उसके माध्यम से संपूर्ण समाज के शिक्षण-- दीक्षण एवं विकास से है। व्यक्ति से ही समाज बनता है और समाज में रह कर ही उसका विकास संभव है। अतः हम किस प्रकार का समाज चाहते हैं यह पहले स्पष्ट होना चाहिये। समाज के आधार की कल्पना स्पष्ट होने के बाद ही हम व्यक्ति को वैसा बनाने की सोच सकते हैं जो कल्पित समाज के अनुकूल अपने को ढाल सके और उसका आदर्श नागरिक बन सके। पहले हमारे देश में राजतंत्र था — राजा ही राज्य का सर्वेसर्वा था। प्रशासनिक, विधायी एवं न्यायिक सभी अधिकार राजा के रूप में एक ही व्यक्ति को प्राप्त थे अतः उस समय जो शिक्षा बच्चों को दी जाती थी उसका आधार उस व्यक्ति के प्रति उसे निष्ठावान बनाना और अपना सर्वस्व उसके लिये अर्पण कर देना था। व्यक्ति पूजा ही शिक्षा का मुख्य लक्ष्य था। यही बात राजा से उतर कर नीचे परिवारों तक चली गई। राजा जब तक अपनी प्रजा को पुत्रवत् समझता रहा और उसके अनुकूल व्यवहार करता रहा तब तक वह पूजा गया और वह व्यवस्था सर्वमान्य तथा अच्छी रही। परन्तु कालांतर में वह निरंकुश बन गया और अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए अपने अधिकारों का उपयोग करने लगा तो उसका विरोध हुआ। राजतंत्र के स्थान पर कुलीन तंत्र (Aristocracy) की शासन की व्यवस्था एक व्यक्ति के हाथ में चली गई। राज दरबारी, जागीरदार-जमींदार पनपते गये और समाज का सारा ढांचा धीरे-धीरे विभिन्न प्रशासन, इकाइयों और जाति वर्ग व समूह में बढ़ता चलता गया। इस अवधि में शिक्षा का स्वरूप भी बदला तथा वह वर्ग विशेष तक ही सीमित हो गया। शिक्षा कुछ ही लोगों, विशेषकर राज काज

से संबंधित व्यक्तियों तथा उच्च वर्ग के लिये सुरक्षित कर दी गई। इससे राज्य वर्ग के व्यक्तियों एवं प्रजा की दूरियां बढ़ती चली गई। समाज में कई प्रकार की विषमताएं पैदा हो गई ! फलतः समाज में असंतोष व्याप्त होता गया और आपसी फूट के कारण झगड़े बढ़ते ही चले गये। इससे जन-साधारण का शोषण बहुत होने लगा। इस अवस्था के कारण न केवल भारत वरन विश्व के कई देशों में कई राजनैतिक क्रांतियां हुई और समाज की शासन व्यवस्था में कई परिवर्तन हुए – भारतवर्ष में भी सामाजिक क्रांति कई रूपों में होती रही और उसके फलस्वरूप हमने भी अन्य देशों की भांति प्रजातंत्र को स्वीकार किया। इसमें एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों की शासन व्यवस्था न होकर बहुत की शासन व्यवस्था लागू हुई।

यह सब कुछ होते हुए भी भारत वर्ष में शिक्षा व्यवस्था अपने ही प्रकार की रही। आध्यात्मिक तथा मानवीय मूल्यों की प्रधानता के कारण और सांस्कृतिक एकता से सामूहिक एवं समुदाय प्रधान आधारित शिक्षा के सिद्धांत को हमेशा प्रोत्साहन मिला। यह अनौपचारिक शिक्षा के रूप में जानी और बरती गई। इस शिक्षा पद्धति में चेतना (Awareness) और कार्यकारिता पर उतना ध्यान नहीं दिया गया। श्रव्य एवं दृश्य साधनों, पर्व उत्सवों, त्यौहारों, कथा-कीर्तन और तीर्थ-यात्राओं के माध्यम से यह अनौपचारिक शिक्षा प्रदान की जाती रही। ग्रामीण व्यवसायों एवं उद्योगों का ज्ञान स्थानीय निष्णात व्यक्तियों द्वारा घर पर ही दिया जाता था जो उनके धंधों से ज्यादा जुड़ा हुआ और आवश्यकतानुसार दिया जाता था। सारा समुदाय ही शाला के रूप में कार्य करता था। वह औपचारिक पाठ्यक्रम स्थान, समय, आयु-वर्ग, अध्यापक तथा निर्मित मापदंडों की सीमाओं एवं बन्धनों से मुक्त था। शिक्षा व्यवसाय एवं जीवन एक दूसरे के पूरक थे। यह शिक्षा परिब्राजक शिक्षा के रूप में दी जाती थी। उस

समय वह अनौपचारिक शिक्षा का स्वरूप था।

ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के साथ ही भारत की सभी विशेषताओं को समाप्त कर दिया गया। विशेषकर (१) शिक्षा पद्धति एवं भाषा, (२) स्थानीय प्रशासन, (३) संस्कृति को। इन तीन बुनियादी सामाजिक महत्व की विशेषताओं को समाप्त करने का ब्रिटिश शासन में प्रयत्न किया गया। लार्ड मैकाले की शिक्षा पद्धति ने शिक्षा को व्यक्तिवादी ज्ञान देने वाली और नौकरियां देने तक सीमित कर दिया। उसका सामूहिक एवं सामुदायिक आधार धीरे-धीरे समाप्त होने लगा। चेतना एवं कार्यकारिता के स्थान पर अक्षर ज्ञान, वह भी नौकरियों के लिये वर्ग विशेष तक ही सीमित कर दिया गया। इस प्रकार अनौपचारिक शिक्षा के स्थान पर औपचारिक शिक्षा का प्रारम्भ हुआ। भाषा शिक्षण भी वर्गों में बांट दिया गया। प्रशासन की भाषा अंग्रेजी न्यायालय की उर्दू एवं बोल चाल की भाषा स्थानीय बोलियों तक सीमित कर दी गयी। कहने का तात्पर्य यह है कि देश के लोगों को सारे देश के लिये एक ही भाषा कभी नहीं दी गई। उसका फल हम आज तक भुगत रहे हैं। इस शासन व्यवस्था में हमारी शिक्षा, विशेषकर अनौपचारिक शिक्षा का बड़ा ही ह्रास हुआ है।

स्वतंत्रता के बाद भी शिक्षा को राष्ट्रीय स्तर पर आज तक सही दिशा नहीं मिल पा रही है। हम अभी तक अंधेरे में ही भटक रहे हैं। नई शिक्षा नीति से कुछ आशायें बंधी हैं – परन्तु उसका क्रियान्वयन कैसे होगा ? मन, वचन और कर्म से कुछ किया जायेगा या नहीं, कुछ कह नहीं सकते। नई शिक्षा नीति में अनौपचारिक शिक्षा पर अधिक जोर दिया गया है लेकिन इसे केवल बच्चों तक ही सीमित कर दिया गया है।

अनौपचारिक शिक्षा का वास्तविक अर्थ उस शिक्षा से है जो हर तरह से औपचारिकताओं के बन्धन से मुक्त हो। जो समाज के प्रत्येक वर्ग एवं

आयु के लोगों के लिये हो। जिसका आधार सामुदायिक हो तथा जो स्थानीय कार्यकर्ताओं के द्वारा प्रतिपादित हो। जो लाभान्वित होने वाले व्यक्ति से केन्द्रित हो तथा जो स्थानीय धंधों एवं उद्योगों को विकसित कर सके। यह शिक्षा श्रम साध्य होनी चाहिये। साथ ही नवीन ज्ञान वैज्ञानिक दृष्टिकोण से पूरित हो। भारतवर्ष में अनौपचारिक शिक्षा का महत्व कई दृष्टियों से आज भी बहुत है। यह शिक्षा विभिन्नता में एकता की सूत्रधार है। इससे स्थानीय व्यक्तियों को अपने जीविकोपार्जन के लिये स्थानीय स्तर पर ही व्यावसायिक शिक्षा दी जा सकती है जो सभी औपचारिकताओं के बन्धन से मुक्त होकर हर व्यक्ति तक पहुंच सकती है। कृषि प्रधान देश होने के कारण और विकासशील समाज के लिये प्रत्येक व्यक्ति को जीवन यापन हेतु छोटे मोटे काम धंधे में लगना पड़ता है। ऐसी अवस्था में औपचारिक शिक्षा के लिए प्रत्येक व्यक्ति को समय दे पाना कठिन है। इसलिए अनौपचारिक शिक्षा उनके लिये उपयुक्त है।

अनौपचारिक शिक्षा विश्व के सभी देशों में अलग-अलग दृष्टिकोण से अलग-अलग व्यवस्था के आधार पर चलाई जा रही है। कई देशों में अनौपचारिक शिक्षा औपचारिक शिक्षा के क्षेत्र को छोड़ कर अन्य प्रकार से दी जाने वाली जो किसी भी प्रकार की हो और जो किसी वर्ग या आयु के लोगों के लिये हो इस क्षेत्र में आती है। कुछ देशों में इसे Second chance education. कुछ इसे Out of school education, कुछ इसे अवकाश की शिक्षा Leisure time education और कुछ इसे सामुदायिक शिक्षा Community education के रूप में चला रहे हैं।

हमारी नई शिक्षा नीति में वैसे प्राथमिक स्थान ऐसे बच्चों की शिक्षा के लिये दिया गया है जो सामान्य औपचारिक शिक्षा में नहीं आ पा रहे हैं और अपने घरेलू काम धंधों में लगे रहने के कारण उससे वंचित रह जाते

हैं। जिससे हमारी प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के कार्य में बाधा उत्पन्न होती है और राष्ट्र की भावी पीढ़ी का बहुत बड़ा भाग शिक्षा से वंचित रहता जा रहा है। हमारे ग्रामीण समुदाय के, विशेषकर गरीब तबके के बच्चे ७-८ वर्ष की आयु में ही काम धंधे पर लग जाते हैं। इसलिये ९-१४ वर्ष तक के बच्चों का बहुत बड़ा प्रतिशत है जो प्राथमिक कक्षाओं में प्रवेश पाने के बाद भी उन्हें छोड़ देता है। यही कारण है कि नई शिक्षा नीति में अनौपचारिक शिक्षा के माध्यम से इस वर्ग एवं आयु के बच्चों को शिक्षित किये जाने की योजना है।

अनौपचारिक शिक्षा का महत्व :

१. अनौपचारिक शिक्षा औपचारिक शिक्षा की पूरक होती है।

२. इस व्यवस्था में निश्चित अवधि का बन्धन नहीं है।

३. अनौपचारिक शिक्षा समय के बन्धन से मुक्त है।

४. इस व्यवस्था में शिक्षण के लिये निश्चित स्थान नहीं होता।

५. पाठ्यक्रम लचीला होता है। उसमें परिवर्तन की हमेशा गुंजाइश रहती है।

६. यह बालक केन्द्रित व्यवस्था है।

७. शिक्षण अधिगम व्यूह रचना के अन्तर्गत विभिन्न तकनीकें काम में ली जाती हैं।

८. न्यूनतम क्षमताओं के विकास पर अधिक बल होता है।

९. विद्यार्थी अपनी गति एवं मति से आगे बढ़ता है।

१०. पर्यावरणीय ज्ञान तथा आर्थिक क्रिया कलापों की जानकारी दी जाती है।

११. सार्वजनिक शिक्षा के महत्व को समझाने के लिये यह व्यवस्था समुदाय को अभिप्रेरणा देती है।

१२. यह व्यवस्था सामुदायिक केन्द्र के सिद्धांत को प्रतिपादित करती है।

अनौपचारिक शिक्षा का क्रियान्वयन :

१. सर्वेक्षण २. पाठ्यक्रम, ३. प्रशिक्षण — प्रतिमास बैठक, समय-समय पर निर्देशन व निरीक्षण, ४. पर्यवेक्षण, ५. मूल्यांकन ६. समस्याएं और ७. सुझाव (i) इस शिक्षा को वरीयता के क्रम में उचित स्थान देना, (ii) औपचारिक शिक्षा के पूरक रूप में इसे स्वीकार कर कार्य करना, (iii) अधिकारियों एवं कार्यकर्ताओं द्वारा इसे मन से आत्मसात करना, (iv) अनौपचारिक शिक्षा के कार्य में लगे कार्यकर्ताओं का उचित प्रशिक्षण, (v) केन्द्रों का चयन, कार्यकर्ताओं का चयन, साधन सुविधाओं आदि की उचित व्यवस्था करना, (vi) स्वैच्छिक संस्थाओं को इस कार्य हेतु प्रोत्साहित करना एवं कार्य सौंपना (vii) मानदेय समान आधार पर समय पर देना, (viii) सरकारी सहायता समय पर देना और (ix) उपयुक्त अनुपूरक साहित्य एवं शिक्षण सामग्री तथा अन्य सुविधाएं उपलब्ध कराना।

अनौपचारिक शिक्षा व्यवस्था और विकास योजना :

आर्थिक एवं भौतिक विकास के साथ-साथ माननीय विकास आवश्यक है। ये दोनों साथ-साथ समान रूप से चलने चाहिये।

व्यक्ति का शिक्षण न केवल पाठशाला में बल्कि समाज में होता है। जन्म से मृत्यु पर्यन्त शिक्षा का क्रम चलता रहता है। घर, परिवार, समुदाय व समाज से वह सीखता ही रहता है। अत: व्यक्ति व समाज का विकास एक दूसरे के पूरक हैं।

शैक्षिक विकास की अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् (आई.सी.ई.डी.) के अनुसार अनौपचारिक शिक्षा के मूल तत्व निम्न प्रकार है :

१. सहयोग सामुदायिक विकास और सतत शिक्षा व कार्य के प्रति Positive दृष्टिकोण।

२. कार्य से सम्बन्धित साक्षरता (उपयोगी साक्षरता)।

३. वैज्ञानिक दृष्टिकोण और प्रकृति के बारे में प्राथमिक जानकारी।

४. परिवार के पालने और चलाने के लिये समुचित ज्ञान व चतुराई और शिक्षा।

५. जीविकोपार्जन के लिये समुचित शिक्षा।

६. नागरिक कार्यों में भाग लेने हेतु समुचित शिक्षा।

नई शिक्षा नीति और अनौपचारिक शिक्षा :

१९९५ तक १४ वर्ष की आयु के सभी बच्चों को शिक्षित करना और ११ वर्ष की आयु प्राप्त होने तक ५ वर्ष की स्कूली शिक्षा देना ! इस समय लगभग ७५% out of school बच्चे आंध्र, असम, बिहार, जम्मू-कश्मीर, मध्य प्रदेश उड़ीसा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बंगाल में हैं।

नई शिक्षा नीति में अनौपचारिक शिक्षा की मुख्य कार्यनीति और समुदाय की भागीदारी :

१. सभी परिवारों के बच्चों को अच्छी प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराना।

२. सभी वर्ग के बच्चों को समान एवं गुणात्मक शिक्षा उपलब्ध कराना।

३. राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा के कार्यक्रमों में विकास-प्रशिक्षण, साधन सुविधाओं का विकास आदि।

४. राष्ट्र का भविष्य बच्चों की अच्छी शिक्षा पर निर्भर करता है, अत: बच्चे को केन्द्र मान कर शिक्षा में सुधार करना।

५. स्वास्थ्य सुधार, स्वतन्त्रता एवं सम्मान प्राप्त करने के लिये शिक्षा कार्यक्रमों का निर्धारण।

६. बच्चों का स्कूल में भर्ती ही उदेद्श्य नहीं है, वे अपनी शिक्षा

निरन्तर बनाये रखें तथा उनमें गुणात्मकता हो ।

७. स्थान विशेष एवं सामाजिक परिस्थितियों की विभिन्नता के कारण शिक्षा के कार्यक्रमों का विकेन्द्रीकरण करना, इसके लिये अध्यापकों तथा स्थानीय समुदाय की भागीदारी ज्यादा बढ़ाना ।

राज्य सरकारों द्वारा अनिवार्य शिक्षा के लिये कानून बनाना चाहिए। प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के कारण अपर प्रायमरी में बच्चों की संख्या बढ़ेगी। अनौपचारिक शिक्षा से निकले बच्चों को टेस्ट लेकर औपचारिक शिक्षा के अन्तर्गत सम्मिलित करना।

इसके लिए नई शिक्षा नीति में निम्न सुझाव दिए गए हैं :

(क) कामगारी बच्चों को काम देने वालों के लिए आवश्यक हो कि वे बच्चों को आराम दें तथा पोषाहार का प्रबन्ध करें और पार्ट टाइम शिक्षा की व्यवस्था करें।.

(ख) स्थानीय समुदाय और अभिभावकों को जिम्मेदार बनाया जाए कि वे अनौपचारिक शिक्षा के लिए आवश्यक साधन सुविधाएं जुटायें।

(ग) अनौपचारिक शिक्षा के केन्द्र बच्चों की पहुंच के अन्दर होने चाहिए।

(घ) कार्यान्वयन के लिए उचित मशीनरी की स्थापना करना तथा यह मशीनरी साधन जुटाने एवं निर्देशन का कार्य करे, दण्ड देने या निरीक्षण के लिए न हो।

(ड) स्थानीय ग्रामीण संस्थाओं और सरकारी संगठनों का पूर्ण सहयोग हो।

अनौपचारिक शिक्षा का नया कार्यक्रम :

अनौपचारिक शिक्षा औपचारिक शिक्षा की गुणात्मकता के साथ ही उसके पूरक के रूप में होगी। इसके लिए आधुनिक तकनीक का प्रयोग

किया जायेगा जैसे बिजली के लिए सोलर पेक्स का उपयोग, दृश्य-श्रव्य साधनों का उपयोग, रेडियो व केसेट्स प्लेयर आदि का उपयोग इन केन्द्रों में शिक्षा के वातावरण के सुधार के लिए किया जाना चाहिए। अच्छी क्वालिटी का शैक्षिक मेटीरियल इस दृष्टि को ध्यान में रख कर तैयार किया जाना चाहिए कि ये बच्चे किसी न किसी धंधे से जुड़े हुए हैं तथा शिक्षा की अपेक्षाएं उनके अनुकूल हैं।

अनौपचारिक शिक्षा के विभिन्न मॉडेल्स का उपयोग होना चाहिए। इसका पाठ्यक्रम अलग से बना होगा तथा उसमें लचीलापन होगा –

इस शिक्षा में मुख्य विशेषताएं निम्न होंगी –

१. इसमें शिक्षा प्राप्त करने वाला केन्द्र बिन्दु होगा और अध्यापक सहयोगी की तरह कार्य करेगा।

२. अधिगम (Learning)पर ज्यादा जोर दिया जाए – पढ़ाने पर नहीं।

३. बच्चों द्वारा विभिन्न प्रवृतियों का संयोजन करवाना ताकि उनकी प्रतिभाओं का उनके माध्यम से विकास किया जा सके।

४. विभिन्न विधाओं का उपयोग-साधन सुविधाएं विशेषकर उनकी प्रतिभाओं का उनके माध्यम से विकास किया जा सके।

४. विभिन्न विधाओं का उपयोग-साधन सुविधाएं विशेषकर बिजली व अन्य उपकरण (equipment) उपलब्ध हों।

५. मूल्यांकन, की उचित एवं सतत् व्यवस्था का होना अनिवार्य है।

६. भाषा एवं गणित के शिक्षण के लिए उन्हीं टर्म्स को अपनाया जाना चाहिए जो औपचारिक शिक्षा के लिए आवश्यक है ताकि ये बच्चे आगे चल कर औपचारिक शिक्षा कार्यकम के साथ जुड़ सकें।

७. उत्पादकता कार्यक्रम के साथ शिक्षण को जोड़ना, इसमें बच्चों

की भागीदारी हो।

८. मनोरंजन तथा अन्य प्रवृतियों का संचालन एवं आयोजन।

९. निःशुल्क पुस्तकों तथा स्टेशनरी के अतिरिक्त वे सभी सुविधाएं जो लड़कियों और अनुसूचित जाति एवं जन जातियों के बच्चों को दी जाती है – अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों पर पढ़ने वाले बच्चों को भी दी जानी चाहिए।

अध्यापक प्रशिक्षण :

अध्यापक इस योजना के क्रियान्वयन का महत्वपूर्ण अंग है। अतः उसका अच्छा प्रशिक्षण आवश्यक है। इस अध्यापक के लिए निम्न अर्हतायें आवश्यक हैं: (१) स्थानीय हो, (२) मोटीवेटिड हो तथा इस कार्य में विश्वास हो, (३) स्थानीय समुदाय को स्वीकार हो, और (४) समुदाय के कमजोर वर्ग से हो तथा सामुदायिक कार्य करने का अनुभव हो।

महिलाओं को ज्यादा enrole करने हेतु महिला शिक्षिकाओं को नियुक्त करना चाहिए। कुल मिला कर यह प्रशिक्षण ३० दिन का हो सकता है। प्रथम वर्ग में २० दिन का तथा बाद में १० दिन का।

पर्यवेक्षण एवं प्रशासन :

इस कार्यक्रम के लिए पर्यवेक्षण एवं निर्देशन कार्य बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसके लिए प्रशिक्षित नवयुवक २०-२५ केन्द्रों पर पूरे समय का होना चाहिए।

प्रोजेक्ट :

१०० केन्द्रों का एक प्रोजेक्ट होगा जो ब्लाक डेवलपमेंट एजेंसियों के साथ-साथ चलेगा।

स्वैच्छिक संस्थाओं का सहयोग :

इस कार्य में शैक्षिक संस्थाओं, पंचायती संस्थाओं तथा अन्य शिक्षा

के क्षेत्र में कार्यरत संगठनों का सहयोग प्राप्त किया जा सकता है। नई शिक्षा नीति में इन संस्थाओं द्वारा प्रौढ़ एवं अनौपचारिक शिक्षा कार्य में अधिक-से-अधिक सहयोग प्राप्त करने की बात कही गई है। इस कार्य के लिये क्षेत्रीय संस्थाओं को ज्यादा प्रोत्साहन दिया जाना उचित रहेगा।

सतत शिक्षा (Continuing Education)

सभी लाभान्वित बच्चों के लिए आवश्यक है कि उनकी शिक्षा को निरन्तर बनाए रखा जाए। इसके लिए Continuing Education के कार्यक्रम आवश्यक है।

अनौपचारिक शिक्षा के बच्चों को औपचारिक शिक्षा में प्रवेश के लिए व्यवस्था !

सभी प्रकार की सुविधाएं इसके लिए प्रदान करना – स्कॉलरशिप तथा अन्य सुविधाएं देना।

औद्योगिक शिक्षा का प्रबन्ध !

सम शिक्षण विनियमों की स्थापना।

शिक्षा की दृष्टि से एडवांस क्षेत्रों में भी अनौपचारिक शिक्षा का महत्व कम नहीं है। इस शिक्षा को निम्न क्षेत्रों में व्यापक रूप से चलाया जा सकता है।

(क) पहाड़ी क्षेत्र,

(ख) परिगणित एवं आदिवासी क्षेत्र,

(ग) स्लम क्षेत्र,

(घ) कामगारी बच्चों के लिए प्रोजेक्ट्स।

उक्त क्षेत्रों के लिए प्रथक् रूप से क्षेत्रीय योजनाएं बना कर यदि लागू की गई तो सफलता अवश्य मिलेगी और राष्ट्र के यथोचित विकास में इस शिक्षा का अपना महत्वपूर्ण स्थान बना रहेगा।

महिला शिक्षा : महिलाओं की भूमिका

महिलाओं ने आज हर क्षेत्र में उल्लेखनीय कीर्तिमान अर्जित कर अपनी यशस्वी प्रतिभा का परिचय दिया है। आज इक्कीसवीं सदी के प्रवेश द्वार पर जिस समय एक सशक्त, सम्पन्न और समृद्ध भारत राष्ट्र की छवि के निर्माण की प्रक्रिया में सारा समाज संघर्षरत है, उस समय महिलाओं का तेज देश की रचनात्मक साधना में निखर रहा है।

आशा और उत्साह के इन क्षणों में चिन्तनीय तथ्य यह है कि 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' का उद्घोष करने वाले समाज में महिलाएं शोषण का शिकार होती हैं। अर्द्धनारीश्वर की कल्पना करने वाले समाज में दहेज की बलिवेदी पर महिलाओं को न्यौछावर होना पड़ता है।

इसका एकमात्र कारण महिलाओं में व्याप्त निरक्षरता जिसके कारण अशिक्षित और अनपढ़ महिलाओं में जड़ता है। सती प्रथा अन्याय और अत्याचार की परम्परा के रूप मे निर्दयता और हिंसात्मक प्रवृति का उदाहरण है। पति की मृत्यु पर स्त्री के जलने को श्रद्धा का पात्र बनाना, सती के नाम से विभूषित करना, स्त्री को पति की जलती चिता में झोंक देने के द्वार खोलने का षडयंत्र है। किसी जमाने म्रें इसे भले ही अच्छा माना गया हो किन्तु प्रथा के रूप में मान्यता कभी नहीं दी गई। आज प्रजातंत्र के युग में सती होने को सहन नहीं किया जा सकता। किन्तु इसमें भी संदेह नहीं कि कानून बना देने मात्र से सती होना और जबरन जलाकर सती घोषित कर देना बन्द न होगा। इसके लिए जनमत जाग्रत करना होगा और जनमत का निर्माण साक्षरता प्रसार एवं समाज शिक्षा के माध्यम से ही किया जा सकता है।

साक्षरता प्रसार से ही दहेज प्रथा को समाप्त किया जा सकता है।

दहेज प्रथा को समाप्त करने के लिए शिक्षा का इतना व्यापक प्रचार आवश्यक है कि युवक अपनी भुजाओं पर विश्वास करें। आत्मनिर्भरता का परिचय दें। स्वयं को बेचे जाने के लिए दहेज की नीलामी को रोकें। महिलाएं शिक्षा के साहस का परिचय दें और माता-पिता पुत्र और पुत्री को समान प्रतिष्ठा दें।

बाल-विवाह को रोकने के लिए कानून बने हैं। नवीनतम कानून १८ वर्ष से कम की कन्या और २१ वर्ष से कम के युवक के विवाह का निषेध करता है क्योंकि इससे पूर्व कन्या शारीरिक और मानसिक दृष्टि से अक्षम होती है। इससे पूर्व विवाह होने से संतानोत्पति में अक्षम होने के कारण वह शीघ्र ही मृत्यु का ग्रास भी बन जाती है। यदि बच्चा हो भी जाए तो जच्चा और बच्चा दोनों कमजोर होते हैं। जन्म और मृत्यु और मृत्यु की गणना के तथ्य इस यथार्थ का संकेत देते हैं कि मृत्यु को प्राप्त होने वाली महिलाओं में बच्चे को जन्म देते समय मरने वाली महिलाओं का प्रतिशत अधिक है। इस तथ्य के बावजूद पालने से उठाकर शिशुओं को लग्नमंडप में ले जाने का यथार्थ आज भी विद्यमान है।

बाल विवाह के दोषों को समाज शिक्षा के द्वारा हृदयंगम कराया जा सकता है और बाल विवाह के दोषों के प्रति जब समाज शिक्षा के माध्यम से महिलाओं में जागरण आएगा तभी बाल विवाह रोके जा सकेंगे।

महिला शिक्षा की ओर इस समय सरकार का ध्यान केन्द्रित है और सार्वजनिक शिक्षण संस्थाएं एवं स्वयंसेवी संस्थाएं भी इस ओर अग्रसर हैं। यदि महिलाएं स्वयं इस ओर सजग और सावधान होकर आगे आयें तो वे सबसे अधिक सार्थक भूमिका निभा सकती हैं।

नारी में साक्षरता प्रसार जरूरी

परिवार में नारी का स्थान उतना ही महत्वपूर्ण होता है जितना कि घर के मुखिया का। यदि परिवार में नारी स्वस्थ सुशिक्षित और समझदार हैं तो रहन-सहन के स्तर में अपने आप सुधार की गुंजाइश रहती है। लेकिन क्या भारत के सुदूर ग्रामीण इलाकों के बारे में ऐसा संभव हो सकता है जहां अशिक्षा, अज्ञान और अंधविश्वास का साम्राज्य है।

हमारे देश की जनसंख्या का अधिकांश भाग गांवों में रहता है। यह विडम्बना ही है कि आजादी के ४९ वर्ष बाद भी आज गांवों में लड़कियों की शिक्षा को अनावश्यक बताकर उन्हें प्रकाश से दूर रखा जाता है। ऐसे में अज्ञानता में जीती इन महिलाओं की स्थिति दयनीय है, जिन्हें सड़कों और फुटपाथों पर शाक-सब्जी बेचते, ईंट गारा ढोते, खेतों में पसीना बहाते हुए देखा जा सकता है। इनकी संख्या ७५ प्रतिशत है।

शिक्षा का अभाव अनेक समस्याओं को जन्म देता है। तरह-तरह के अन्धविश्वास, टोने-टोटके और गंडे-तावीज जहाँ एक ओर रोजमर्रा की जिन्दगी के लिये मीठा जहर हैं वहीं दूसरी ओर ऐसे संकेत मिलते हैं जिनसे ग्रामीण नारी के उबरने की कोई संभावना नहीं दिखती।

लेकिन वक्त के साथ बदलाव तो आता ही है। साक्षरता के प्रसार के साथ ही अब महिलाओं में शिक्षा के प्रति जाग्रति आई है। महिलाओं की साक्षरता सम्पूर्ण वातावरण को प्रभावित करती है। महिला अपने बच्चे की 'शिक्षा-दीक्षा' के लिये वरदान सिद्ध होती है, किन्तु साक्षर और शिक्षित महिला अपने पति, देवर, जेठ, भाई-बहन, ननद-भौजाई सबके लिये प्रेरणादायक सिद्ध होती है। समाज में साक्षरता अभियान को सफल बनाने की दृष्टि से महिला साक्षरता का अपना ही महत्व है, अपना ही आकर्षण है।

गांवों में शिक्षा प्रसार की जो रफ्तार रही है वह संतोषजनक नहीं है। यद्यपि गांवों में रहने वाली महिलाओं को विकास की मुख्यधारा से जोड़ने के लिये अनेक प्रयास किये जा रहे हैं परन्तु उनके सार्थक परिणाम प्राप्त नहीं हुए हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ के एक अध्ययन के अनुसार भारत में १३ करोड़ से भी अधिक ग्रामीण महिलाएं दयनीय और अस्वस्थ स्थिति में जिंदगी गुजार रही हैं। इन महिलाओं में शिक्षा का प्रसार बहुत जरूरी है। क्योंकि उनके जीवन में लाया गया आज का परिवर्तन आने वाली पीढ़ियों को सुधारने के लिये मील का पत्थर बन सकता है। यह तभी सम्भव होगा जब समाज इसे अपनी जिम्मेदारी समझे। यह एक नैतिक और मानवीय कर्तव्य है।

राजस्थान में तो महिला साक्षरता का प्रतिशत बहुत कम है। राजस्थान की महिलाएं कर्मठता का प्रतीक हैं। जहां पानी सुलभ नहीं है वहां की महिलाएं मीलों चलकर पानी भरती हैं और पानी के घड़ों को सिर पर रख कर फिर मीलों चलकर लौटती हैं। खेत में खलिहान में, घरों में, कारखानों में, दुकानों में, कार्यालयों में सब जगह महिलाओं को कठोर परिश्रम करते देखा जा सकता है। इसलिये यदि साक्षरता कार्यक्रमों में संलग्न कार्यकर्ता, महिलाओं को सम्मान देते हुए साक्षरता की दिशा में उन्हें प्रेरित करें तो आशातीत सफलता अर्ज़ित की जा सकती है।

महिलाएं सहानुभूति, करूणा, दया, क्षमा और ममता की मूर्तियां हैं, उनके गुणों की सराहना करते हुए सार्थक भूमिका निभाने के लिये अपने तेजस्वी व्यक्तित्व को विकसित करने की प्रेरणा दी जानी चाहिये। इसके लिये आवश्यकता इस बात की है कि महिलाओं को आत्मनिर्भर बनने की ओर प्रेरित किया जाये। उन्हें ऐसे औद्योगिक व्यावसायिक प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की जाये, ताकि वे अपने परिवार का खर्च चलाने में कुछ न

देश के औद्योगिक विकास में श्रमिक शिक्षा की भूमिका

शिक्षण एक निरंतर प्रक्रिया है और इसकी सार्थकता तभी होगी जब इसका विकास समग्र प्रसार क्षेत्रों में हो। देश में श्रमिक शिक्षा की भी उतनी ही आवश्यकता है जितनी की औपचारिक शिक्षा की। वर्तमान में औद्योगिक भारत का भविष्य यदि पूर्णरूपेण नहीं तो बहुत अंश में, श्रमिक शिक्षा की सफलता पर भी निर्भर है।

श्रमिक शिक्षा पर ऐतिहासिक दृष्टि डाली जाये तो इस दिशा में सर्वप्रथम प्रयास सन् १८७७ ई. में किया गया, जब कि बंबई में विक्टोरिया रजत जयंती प्राविधिक संस्थान की स्थापना की गई। इस संस्थान के द्वारा मिल के श्रमिकों को शिक्षण दिया जाता था।

सन् १८७८ ई. में कलकत्ता में ब्रहम समाज के द्वारा वर्किंगमेंस मिशन की स्थापना की गई। इस संस्था के द्वारा कामगार एवं समाज के अन्य प्रताड़ित एवं अशिक्षित व्यक्तियों के लिए रात्रि-पाठशालाओं का संचालन प्रारंभ हुआ।

सन् १९०५ में कलकत्ता की गंदी औद्योगिक बस्तियों में श्रमिकों की शिक्षा संबंधी कार्यक्रमों का संगठन किया गया। पर ये सभी प्रयास अति अल्प-अवधि के प्रयास थे।

सन् १९०९ में भारतीय औद्योगिक आयोग ने औद्योगिक विकास की मंदगति के कारणों का विवरण देते हुए श्रमिकों की अशिक्षा को इसका एक मूल कारण बतलाया। शाही श्रम आयोग ने इस विषय पर अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है कि भारत में लगभग सम्पूर्ण श्रम समाज अशिक्षित है। ऐसी स्थिति औद्योगिक दृष्टि से विकसित अन्य देशों में नहीं पायी जाती।

इस अयोग्यता का प्रभाव उनकी मजदूरी, स्वास्थ्य, उत्पादन, संगठन तथा अनेक अन्य क्षेत्रों में भी परिलक्षित होता है। वर्तमान मशीन उद्योग एक विशेष सीमा तक शिक्षित श्रमिकों तक निर्भर है और अशिक्षित श्रमिकों द्वारा ऐसे उद्योगों के विकास का प्रयास अति कठिन कार्य है। इसी कारण इस बात पर जोर दिया गया कि औद्योगिक श्रमिकों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये।

पाश्चात्य विद्वान हेरीलेडर के अनुसार श्रमिक शिक्षा संगठित-श्रमिकों द्वारा किया गया ऐसा प्रयास है जिसके द्वारा शैक्षिक प्रणाली के अंतर्गत सदस्य श्रमिकों के शिक्षण की व्यवस्था की जाती है। इसके तहत श्रमिकों द्वारा शिक्षण का पाठ्यकम निर्धारित किया जाता है, शिक्षकों का चुनाव किया जाता है और बहुत अंश में आर्थिक व्यय-भार वहन किया जाता है।

श्रमिक शिक्षा के द्वारा सामूहिक विकास तथा समूह की समस्याओं को सुलझाने पर विशेष जोर दिया जाता है। इस पकार व्यावसायिक एवं वृत्तिक शिक्षण में अंतर है क्योंकि इन दोनों पकार की शिक्षण संस्थाओं के अन्तर्गत व्यक्तिगत विकास पर विशेष बल दिया जाता है।

श्रमिक शिक्षा के अन्तर्गत सांस्कृतिक एवं मनोरंजन सम्बन्धी कार्यकमों को सम्मिलित किया जाता है, पर ये कार्यकम श्रमिक शिक्षा के बाह्य उद्देश्य हैं। इसका वास्तविक उद्देश्य तो श्रमिकों के कार्यस्थल, स्थानीय समुदाय तथा विश्व के सन्दर्भ में श्रमिकों की स्थिति को ऊंचा उठाना एवं उनकी समस्याओं का निराकरण करना है।

श्रमिक शिक्षा के उद्देश्य

जनतांत्रिक समाज के क्रिया कलापों में किसी व्यक्ति की प्रभावशाली ढंग से सहभागिता इस बात पर आधारित है कि वह व्यक्ति किस प्रकार

के संगठन का सदस्य है। औद्योगिक जनतन्त्र में श्रमिक संगठन का सदस्य है।

श्रमिक शिक्षा का लक्ष्य उत्पादकता में वृद्धि भी है। श्रमिक जब पूर्ण शिक्षित हो जाता है, अपनी जिम्मेवारियों को समझने लगता है और नवीनतम कलपूर्जों के संचालन हेतु अभीष्ट ज्ञान एवं कौशल की प्राप्ति कर लेता है तो उसकी उत्पादनशीलता में वृद्धि होती है।

श्रमिक शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य श्रमिकों में ऐसी योग्यता का विकास करना है कि वे मानव जीवन के उद्देश्यों को समझते हुए मानवता के वास्तविक उद्देश्यों को समझ सकें।

श्रमिक शिक्षा का अंतिम उद्देश्य सामान्य श्रमिकों के बीच में नेतृत्व के गुणों का विकास करते हुए श्रम संगठनों के बीच जनतंत्र की स्वस्थ प्रक्रियाओं एवं परम्पराओं का विकास करना है।

भारत में सन् १९५८ में श्रमिक शिक्षा योजनाओं को व्यापक स्तर पर कार्यान्वयन हेतु केन्द्र सरकार ने श्रमिक शिक्षा परिषद् की स्थापना की।

परिषद् का मूलभूत कार्य देश में श्रमिक शिक्षा के कार्यक्रमों का विकास करना है। इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु इसे नीति निर्धारण से लेकर उनके कार्यान्वयन तक समस्त कार्यों को पूरा करना पड़ता है। परिषद् के द्वारा उपयुक्त मात्रा में अध्ययन सामग्री की व्यवस्था की जाती है। उसका वितरण विभिन्न प्रादेशिक केन्द्रों में किया जाता है, और श्रमिक संघों को भी अनुदान देकर शिक्षण-कार्यक्रमों के संचालन हेतु प्रेरणा दी जाती है। सब कुछ मिलाकर परिषद् का कार्य श्रमिक-शिक्षा योजनाओं का देश में विकास करना है।

इसमें सन्देह नहीं कि श्रम-संघ, श्रमिक शिक्षा, श्रम विधान, औद्योगिक संबंध, उत्पादकता मजदूरी आदि विषयों पर सम्यक् ज्ञान आदि आवश्यक

है और इन विषयों को पाठ्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करना चाहिये, पर साथ ही साथ आर्थिक एवं सामाजिक विषयों के आधारभूत सिद्धांतों का भी श्रमिकों को पर्याप्त ज्ञान होना चाहिये क्योंकि अधिकांश श्रमिक ग्रामीण-अंचलों से आते हैं, वे अशिक्षित होते हैं अतः उनके शिक्षण का पाठ्यक्रम इस प्रकार निर्मित होना चाहिये कि वे अपेक्षाकृत अधिक आसानी से विषयों का ज्ञान प्राप्त कर लें!